ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 08 मार्च 2026

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार, 08 मार्च 2026 से 14 मार्च 2026

चैत्र कृ. 05 ● वि० सं०-2082 ● वर्ष 67, अंक 10, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 202 ● सृष्टि-संवत् 1,96,08,53,126 ● पृ.सं. 1-12 ● मूल्य - 5/- रू. ● वार्षिक शु. 300/- रू.

नवलखा महल उदयपुर के गुलाब बाग में राष्ट्र मंदिर का लोकार्पण एवं सत्यार्थ प्रकाश महोत्सव

उदयपुर में नवलखा महल के अंदर निर्मित राष्ट्र मंदिर के लोकार्पण का हज़ारों आर्यजनों की साक्षी में समापन हो गया। इससे पूर्व 'एक शाम महर्षि दयानंद के नाम' कार्यक्रम में राष्ट्र मंदिर में जिन 18 क्रांतिकारियों के स्कल्पचर्स बनाए गए हैं उनको एक कविता के रूप में श्रद्धांजलि दी गई। सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं पर आधारित 'सत्यार्थ बोध' नाम की एक प्रभावोत्पादक नाटिका प्रस्तुत की गई।

पूर्व सांसद स्वामी सुमेधानंद सरस्वती की अध्यक्षता में आयोजित स्मृति श्रद्धांजलि कार्यक्रम में वक्ताओं ने श्रद्धानंद जी और अन्य क्रांतिकारियों को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामंत्री श्री प्रकाश आर्य जी (मऊ) थे। इसके अतिरिक्त वक्ताओं ने प्रेरणादायक उद्बोधन दिए। विशिष्ट अतिथि श्री विनोद बंसल ने स्वामी श्रद्धानंद जी को उस समय में भारतीय शिक्षा पद्धति के उद्धारकर्त्ता के रूप में दर्शाया। न्यायमूर्ति

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

डी.ए.वी. जैतों में ऋषि जन्मोत्सव

डी.ए.वी. सेंटेनरी पब्लिक स्कूल जैतों में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की वर्षगाँठ हर्षोल्लास से मनाई गई।

इस अवसर पर सर्वप्रथम भगवान का ध्यान करते हुए प्रधानाचार्या, समूह स्टाफ और विद्यार्थियों द्वारा स्कूल के शिक्षकों द्वारा अपने कपड़े, जूते और पुराना सामान जैतों में बने गुरु नानक मोदीखाने में दान किए गए। कक्षा चौथी से छठी के विद्यार्थियों द्वारा बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ विषय पर बहुत ही सुंदर स्लोगन बनाए गए। प्रार्थना सभा में कक्षा सातवीं और आठवीं के

प्रागंण में यज्ञ किया गया। कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन पर प्रकाश डालते हुए भाषण दिए गए। विद्यार्थियों और शिक्षकों द्वारा सुंदर भजन प्रस्तुत किए गए। कक्षा तीसरी और चौथी के विद्यार्थियों के लिए गायत्री मंत्र और डी.ए.वी. गान लिखने एवं सुंदर लेखन की प्रतियोगिता करवाई गई। कक्षा पहली से बारहवीं के विद्यार्थियों और विद्यार्थियों से गायत्री मंत्र का उच्चारण और ध्यान करवाया गया।

प्राचार्या शर्मा ने कहा कि डी.ए.वी. में पढ़ रहे छात्रों, यहाँ के अध्यापकों, कर्मचारियों और अभिभावकों को 'डी' अर्थात् ऋषि दयानन्द के जीवन और कार्यों से परिचित होकर उनके जीवन मूल्यों को धारण करने का संकल्प लेना चाहिए। धन्यवाद ज्ञापन तथा शान्ति पाठ से कार्यक्रम संपन्न हुआ।

डी.ए.वी. जालन्धर में भाषण प्रतियोगिता

डी.ए.वी. कॉलेज जालन्धर के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग द्वारा वेद प्रचार मण्डल जालन्धर के सहयोग से एक अन्तर्महाविद्यालयी वैदिक भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। इस आयोजन की अध्यक्षता जी.आर. डी ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूट्स फगवाड़ा के निदेशक डॉ. नीलम सेठी ने की। लिया। प्रतियोगियों ने अपने भाषणों में वैदिक संस्कृति और वर्तमान समय की समस्याओं और चुनौतियों पर अपने विचार प्रस्तुत किए।

श्री रोशन लाल आर्य ने वेद प्रचार मण्डल द्वारा किए जा रहे कार्यों का विवरण दिया। मुख्य अतिथि श्री विनीत ने छात्रों को संस्कारित करने के इस प्रयास की प्रशंसा की।

प्राचार्य डॉ. अनूप कुमार एवं श्री रोशन लाल आर्य ने विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थिति दी।

कार्यक्रम का शुभारम्भ दीप प्रज्ज्वलित कर किया गया।

इस प्रतियोगिता में 27 महाविद्यालयों से आए 50 से अधिक छात्रों ने भाग लिया।

डॉ. कुंवर राजीव ने सभा प्रतिभागियों और अतिथियों का स्वागत किया। विजेताओं को पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र दिए गए। प्रतियोगिता में आर्य महिला कॉलेज प्रथम, पॉलिटैक्निक कॉलेज जालन्धर–द्वितीय तथा डी.ए.वी. जालन्धर– तृतीय रहे।

जो सब जगत् के पदार्थों को संयुक्त करता और सब विद्वानों का पूज्य है और ब्रह्मा से लेके सब ऋषि मुनियों का पूज्य था, है और होगा, इससे उस परमात्मा का नाम **'यज्ञ'** है। क्योंकि वह सर्वत्र व्यापक है। स. प्र. समु. १

{संपादक – पूनम सूरी}

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार, 08 मार्च 2026 से 14 मार्च 2026

तैंतीस वीर्य

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

इदं वर्चो अग्निना दत्तमागन्, भर्गो यशः ओजो वयो बलम्।
त्रयस्त्रिंशद् यानि च वीर्याणि, तान्यग्निः प्रददातु मे।।

अथर्व 19.37.1

ऋषिः **अथर्वा**। देवता **अग्निः**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

●(**अग्निना**) अग्नि–स्वरूप परमेश्वर से (**दत्तं**) दिया हुआ (**इदं**) यह (**वर्चः**) ब्रह्मवर्चस, (**भर्गः**) तप (**यशः**) यश, (**सहः**) साहस, (**ओजः**) ओज, (**वयः**) आयुष्य [और] (**बलं**) बल (**आगन्**) [मुझे] प्राप्त हो। (**यानि च**) और जो (**त्रयस्त्रिंशत्**) तेंतीस (**वीर्याणि**) वीर्य [हैं], (**तानि**) उन्हें (**अग्निः**) परमेश्वर (**मे**) मुझे (**प्रददातु**) प्रदान करे।

● परमेश्वर सर्वशक्तिमान् हैं, सब गुणों के आगार हैं। इधर मैं अत्यन्त अल्पशक्ति हूँ और अनेक न्यूनताएँ एवं अभाव मेरे अन्दर विद्यमान हैं। पर मैं इनसे निराश नहीं हूँ। परमेश्वर से सम्बन्ध जोड़कर मैं भी शक्तियों और गुणों का पुंज बन सकता है। मेरी कामना है कि मैं वर्चस्वी प्रभु से ब्रह्मवर्चस प्राप्त करूँ, ब्रह्मतेज से देदीप्यमान बन जाऊँ, जिससे कोई भी ब्रह्म–विरोधी भावनाएँ मुझे पराजित न कर सकें। मैं तपस्वी प्रभु से तपस्या की शिक्षा लूँ, इतना तप करूँ कि मेरे तप से समस्त पाप–वासनाएँ भस्म हो जाएँ। मैं यशस्वी प्रभु को यशः प्राप्ति के लिए अपना आदर्श बनाऊँ। उसके समान मैं भी अनुपम कीर्ति से जगमगाऊँ। मैं साहसी प्रभु से साहस प्राप्त करूँ। साहस ही मनुष्य को जटिल से जटिल कठिनाइयों से पार लगाता है। मैं ओजस्वी प्रभु से ओज ग्रहण करूँ, क्योंकि ओज ही शरीर एवं आत्मा का धन है। मैं आयुष्मान् प्रभु से दीर्घ आयुष्य प्राप्त करूँ, जिससे चिरकाल तक समाज की सेवा कर सकूँ। मैं बलवान प्रभु से शिक्षा लेकर अपने अन्दर मनोबल और दैहिक बल का संचय करुँ, जिससे मानसिक एवं बाह्य शत्रुओं से लोहा ले सकूँ।

ज्योतिर्मय परमात्मा मुझे वे तेंतीस वीर्य प्रदान करें जो मानव की पूर्णता के लिए आवश्यक हैं। ये तेंतीस वीर्य हैं दस इन्द्रिय–बल, चार अहंकार–चतुष्टय के बल, एक आत्मा का बल, पांच प्राणबल, पांच अन्नमयादि कोषों के बल, आठ अणिमादि योगसिद्धियों के बल। मानव–शरीर के अन्दर स्थित ये इन्द्रियादि यदि बलवान् नहीं होते, तो ये मनुष्य को पथभ्रष्ट करने में कारण बनते हैं। निर्बल इन्द्रियाँ अन्तर्मुखता को छोड़कर भोग–विषयों की ओर आकृष्ट होने लगती है। निर्बल आत्मा कामादि रिपुओं के वशीभूत हो जाना है। निर्बल प्राणपान आदि अपनी प्राणन आदि क्रियाओं को साधु प्रकार से न कर सकने के कारण शरीर को रूग्ण एवं क्षीण कर देते हैं। निर्बल अन्नमयादि कोष आत्मोन्नति के सोपान न बनकर आत्मा को गिरानेवाले बन जाते हैं। निर्बल अणिमालघिमा आदि योगसिद्धियाँ परमात्म–साक्षात्कार में सहायक न होकर मनुष्य को सांसारिकता में ही फँसाये रखती हैं। अतः तेज और बल के परम स्रोत अग्नि प्रभु से मैं अपनी सम्पूर्ण विनम्रता के साथ याचना करता हूं कि वे मुझे उक्त तेंतीस प्रकार के बलों से बनाकर पूर्णता प्रदान करें।

❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

प्रभु–भक्ति

● महात्मा आनन्द स्वामी सरस्वती

स्वामी जी इस पुस्तक में मोक्ष प्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त कर रहे हैं। आत्मा का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति है। मोक्ष प्राप्ति के लिए महर्षि दयानन्द जी ने अष्टांग योग को प्रमुख माना है। यम, नियम आदि योग की आठ सीढ़ियों पर चढ़कर ही आत्मा समाधि की अवस्था में चला जाता है जहाँ पहुँचकर सुख–दुख, शोक, मोह आदि समाप्त हो जाते हैं उस समय आत्मा परमात्मा में लीन हो जाता है। उसे परमात्मा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सूझता। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रातः जल्दी उठकर ओ३म् तथा गायत्री आदि का जाप करना, प्राणायाम करना, सन्ध्या हवन आदि करना, पवित्र आचरण करना आवश्यक है। गायत्री मन्त्र और ओ३म् के साथ–साथ जपने से लोक–परलोक सुधरते हैं और मन तथा बुद्धि की एकाग्रता प्राप्त होती है, इनका जप प्रातः पूर्वाभिमुख बैठकर करें....।

.... अब आगे

मन की बात

भगवान् के मन्दिर में प्रत्येक इन्द्रिय और प्रत्येक नाड़ी काम आने वाली है। नाड़ियों द्वारा ही उपासना करनी होती है। **{उपासना नाड़ियों ही के द्वारा धारण करनी होती है। सित इड़ा और असित पिंगला–ये दोनों जहाँ मिल जाती हैं, उसको सुषुम्णा कहते हैं। उसमें योगाभ्यास से स्नान करके जीव शुद्ध हो जाता है। (ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका)}** परन्तु इन सबमें सर्वोपरि मन है और सच पूछिये तो यह मन की ही कृपा है कि हम इस शरीर में बैठे हैं। प्रश्न–उपनिषद् में तीसरा प्रश्न यही है कि यह इस शरीर में कैसे आाता है ? इसका उत्तर उपनिषद् ने यह दिया है–

मनोऽधिकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे।

अर्थात् मन के काम से यह शरीर में आता है– "जो मन से शुभ–अशुभ संकल्प किये जाते हैं, उनके कारण से यह शरीर में आता है।"

महाभारत में भी यही कहा है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

"मन ही मनुष्य के बन्धन का और मन ही मनुष्य के मोक्ष का कारण है।"

वेद भगवान् ने तो सबसे पहले यह आदेश किया है कि मन के बिना कोई भी काम नहीं किया जा सकता–

यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।। (यजु. 34–3)

यही है वास्तव में कुंजी सब कर्मों की। यदि यह हाथ में आ जाए तो सब कुछ मिल जाता है। निस्सन्देह, परमात्मा तक मन की भी पहुँच नहीं, परन्तु यह एक प्रमाणित सत्य है कि प्रभु–निवास के द्वार तक पहुँचा भी यही सकता है। इसकी शक्ति बहुत बड़ी है और श्री शंकराचार्य जी ने तो इसकी महिमा और भी बढ़ा दी है। किसी ने प्रश्न पूछा–

"जितं जगत् केन ?"

उन्होंने उत्तर दिया–**"मनो हि येन !"** अर्थात् संसार को किसने जीता ? जिसने मन पर विजय पा ली। छान्दोग्य उपनिषद् प्रपाठक 7 खण्ड 3 के आदि ही में यह कहा गया है–**मनो ह्यात्मा मनो हि ब्रह्म मन उपास्स्वेति**–"मन निस्सन्देह आत्मा है, अर्थात् मन ही लोक तथा ब्रह्म की प्राप्ति का साधन है। लोक–परलोक दोनों मन ही से सिद्ध होते हैं।" ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल में एक सुन्दर मन्त्र है जिसमें यह आदेश किया है कि–

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र
वेषीदेको युधये भूयसश्चित्।

(ऋ. 5–30–4)

'हे ईश्वर की इच्छा करनेवाले ! यदि तू समर्थ होकर मन को स्थिर करे तो तू अकेला ही बहुतों को भी युद्ध के लिए जीत सकता है–पर्याप्त है।'

मन की इतनी बड़ी महिमा है। चाहे इस लोक का अभ्युदय प्राप्त करना हो, चाहे ब्रह्मलोक में पहुँचना हो, दोनों के लिए मन का स्थिर करना अनिवार्य है।

इसके साथ यह सदा सम्मुख रखिये कि मन और शुक्र अर्थात् वीर्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'हठयोग प्रदीपिका' में एक बड़ा मार्मिक श्लोक आता है–

चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः।।

"मनुष्यों का शुक्र (वीर्य) चित्त के अधीन है अर्थात् चित्त के चलायमान होने पर वीर्य भी चलायमान हो जाता है, इससे शुक्र मन के वशीभूत है और

मनुष्यों का जीवन शुक्र के अधीन है अर्थात् शुक्र की स्थिरता से जीवन और शुक्र की नष्टता से मरण होता है, इसलिए जीवन शुक्र के अधीन है इसलिए यह आवश्यक है कि शुक्र और मन की भली प्रकार यत्न से रक्षा करे।" इसका प्रयोजन यही है कि यदि जीवन की कामना है तो मन को स्थिर रखने का प्रयत्न करो।

ऐसा है वह मन जो इस प्रभु मन्दिर में वास करता है। जब तक इसको अपना साथी अथवा मित्र न बना लिया जाए, तब तक यह बाधक बनकर हमें तंग करता रहेगा और प्रभु–मन्दिर में पहुँचकर भी प्रभु–दर्शन से वंचित रक्खेगा। गंगा में खड़े होकर भी जलपान नहीं करने पायेंगे, प्यासे–के–प्यासे ही रह जायेंगे। इसलिए सबसे पहले मन की ओर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है। एक उर्दू कवि ने भी कहा है–

बड़ी नायाब[1] शै है यह
दिले–बेताब[2] सीने में।
हज़ारों कीमती लालो–गुहर[3] हैं
इस दफीने[4] में।।

{1. न मिलनेवाली। 2. चंचल मन। 3. हीरे पन्ने–रत्न। 4. खजाना}

और एक दूसरे कवि को तो 'दिल' ही भगवान् का निवास–स्थान दिखाई दिया। वह कहता है–

ख़ानये–दिल[5] में मिले वो जलवागर।
दर–बदर[6] भटका किये जिसके लिए।।

{5. मन के अन्दर। 6. द्वार–द्वार पर}

तो इसकी ओर से नेत्र बन्द नहीं किये जा सकते, अपितु पहले इसी की शरण लेनी पड़ती है। यदि मन हाथ में आ गया तो फिर प्रभु के दरबार में बेखटके पहुँचा जा सकता है। यह कार्य कहने को तो सरल है, किन्तु करने को अत्यन्त कठिन है। गीता में अर्जुन भी तो यह पुकार उठा था– "हे महाराज ! यह मन बड़ा चंचल और प्रमथन स्वभाववाला है तथा बहुत दृढ़ और बलवान् है। इसलिए इसको वश में करना मैं वायु की भाँति दुष्कर मानता हूँ।" और कृष्ण भगवान् ने भी यह कहा है कि निस्सन्देह मन बड़ा चंचल और कठिनता से वश में होनेवाला है, किन्तु धैर्य देकर यह भी कहा कि अभ्यास और वैराग्य से यह वश में किया जा सकता है।

पहला साधन–ज्ञान

मन को वश में करने का सबसे पहला साधन है 'ज्ञान'। यदि यह ज्ञान हो जाए कि इस संसार की वस्तुओं की वास्तविकता और मूल्य क्या है, तो फिर यह इनके पीछे मारा–मारा न फिरेगा। जब यह पता मिल गया कि मनुष्य का सौन्दर्य केवल मलमूत्र का परिणाम है तो फिर मन उस सौन्दर्य पर लट्टू क्यों होगा ? जब विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया कि हीरा –कोयला एक–जैसे तत्त्वों के बने हुए हैं, तो फिर हीरे की प्राप्ति के लिए मन कोई टेढ़ी चाल नहीं चलेगा। जब ज्ञान हो गया कि यह जो कुछ दिखाई देता है, सब नश्वर है, तो फिर इन खिलौनों के लिए मन दुःखी नहीं होगा, तब विषय–वासना नहीं सतायेगी, तब मोह, लोभ, अहंकार आदि कष्ट नहीं दे सकेंगे। सच ही तो कहा है कवि ने–

मन–पक्षी तब लग उड़े
विषय–वासना माहिं।
ज्ञान–बाज की झपट में
जब लग आया नाहिं।।

इसकी दौड़–धूप, उछल–कूद तब तक ही है जब तक इसे सांसारिक वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान नहीं हो जाता। इसलिए सबसे पूर्व मन को समझाइये और उसे कहिये कि देख भाई! जिस सुन्दरता पर तू रीझा है, वह तो पर्दे से ढकी गन्दगी है। उस पर्दे को हटा दे, उस गन्दगी को बाहर आने दे और फिर देख कि तू मुँह फेर लेता है या नहीं ? जिस धन के पीछे तू पड़ा है और जिसके लिए तू नित्य–नये झूठ तथा दम्भ करता है वह भगवान् की नदियों और पर्वतों से निकली हुई धातुएँ ही तो हैं ! वह मिट्टी और पत्थर ही तो हैं ! और फिर वे सदा किसी के पास ठहरते नहीं। आज तूने अत्यन्त यत्न से उन्हें इकट्ठा किया, प्रभु–प्रजा को सताकर, अनाथ बच्चों के अधिकार पर छापा मारकर, निस्सहाय विधवाओं के वस्त्र उतारकर, निर्बल लोगों और जातियों पर आक्रमण करके, लाखों मनुष्यों के गले काटकर, निर्धन दुःखी हरिजनों की मेहनत–मजूरी–कमाई को टैक्स कर और दूसरे नामों से लूटकर, भोले–भाले, सीधे–सादे प्रभु प्रेमियों को कई चालों में घेरकर यदि इन ठीकरियों को इकट्ठा कर भी लिया तो क्या विश्वास है इस बात का कि कल तक यह तेरे पास रहेगी या तुझसे अधिक बलवान्, अधिक चालबाज, अधिक कपटी सब–कुछ छीन न लेगा या तू ही मृत्यु का ग्रास न बन जायेगा ?

इस प्रकार का ज्ञान जब मन को मिलेगा तो फिर यह नहीं हो सकता कि नश्वर सांसारिक पदार्थों के पीछे भटकता फिरे और अपने धर्म से विमुख हो जाए। तब यह धर्माचार पर आरूढ़ हो जायेगा, नेक कमाई की ओर ध्यान देगा और अपने आपको विषय–वासनाओं से सुरक्षित रक्खेगा। इसके साथ यह भी जानना होगा कि परमात्मा क्या है। यदि इस शरीर में रहते हुए उसे न जाना तो भारी हानि होगी। केन–उपनिषद् में कहा है–

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न
चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति।।

(2–5)

"यहाँ (इसी जन्म में) ही यदि जान लिया तो ठीक है, यदि नहीं जाना तो बड़ा भारी नाश है। अतएव धीर पुरुष सब भूतों में उसको जानकर इस लोक से अलग हो अमृत होते हैं।"

इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् ने भी यही चेतावनी दी है–

इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं
न चेदवेदीन्महती विनष्टिः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे
दुःखमेवाभियन्ति।।

(4–4–14)

"यहाँ रहते हुए हम उसको जान सकते हैं और यदि मैं यहाँ ज्ञान–हीन रहता तो एक भारी विनाश है। जो उसको जानते हैं वे अमृत होते हैं, पर दूसरे दुःख ही अनुभव करते हैं।"

दूसरा साधन–बुरे संकल्पों की निवृत्ति

ज्ञान–प्राप्ति से मन के नेत्र खुल जाने के पश्चात् भी यह सम्भव है कि किसी अवसर पर 'तमाशा' देखने के लिए ही यह फिसल पड़े इसलिए दूसरा साधन मन को वश में करने का यह है कि "बुरे संकल्पों से मन को बार–बार रोकें।" यह अभ्यास कुछ समय लेगा। आपने कई बार अनुभव किया होगा कि मकान की सबसे पीछे की कोठरी में बैठे नेत्र बन्द करके जब मन्त्रों का मानसिक जाप करने लगते हैं तो थोड़ी देर बाद आप देखते हैं कि यह हजरत सब द्वारों को पार करके कहीं–के–कहीं निकल गये हैं और वहाँ अपनी मनमानी में लगे हैं। 'अरे ! यह क्या ? तुझे तो मन्त्र–जाप पर लगाया था, तू यह क्या करने लगा ?' बस, इस प्रकार स्वतन्त्र होने से रोकिये। यह बिना आज्ञा किसी भी संकल्प को हमारे अन्दर न लाने पाए, इसके लिए मन पर कड़ी निगरानी रखें। जब भी यह कोई बुरा संकल्प लेकर आये तो तत्काल उस बुरे संकल्प को मन से बाहर निकाल दीजिये। वेद भगवान् में इसके सम्बन्ध में एक बहुत सुन्दर मन्त्र आता है–

परोऽपेहि मनस् पाप
किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि
संचर गृहेषु गोषु मे मनः।।

(अथर्व. 3–4–1)

"हे मन के पाप ! दूर हो जा, भाग जा यहाँ से। यह क्या बुरी बात तू मुझे सिखलाने आया है ? जाओ, मुझे तुम्हारी कामना नहीं है। वनों के वृक्षों को जाकर चिपटो, मैं तो अपने मन के घर की सफाई में संलग्न हूँ।" जब भी कभी कोई बुरा संकल्प आने लगे, उसी समय पूरे बल के साथ इस मन्त्र द्वारा उसे बाहर धकेल दीजिये।

एक लड़का बड़ा नटखट था। मुहल्ले भर के लड़कों से लड़ता–झगड़ता, स्त्री–पुरुष, बच्चों–बूढ़ों सबको सताता। किसी का चरखा तोड़ दिया, किसी का दुपट्टा फाड़ डाला, किसी के चपत लगा दी, वह रोया, वह गिरा, इधर दौड़ा, उधर दौड़ा, भागकर अपने घर आता। लड़के की माता को नित्य ही उलाहने आने लगे। अड़ोसी–पड़ोसी उसकी माता के पास पहुँचे, बोले – "देखो मासी ! यह तुम्हारा लड़का इस योग्य नहीं कि मुहल्ले में जाये। इसे अपने ही पास रक्खा करो।" माता ने लड़के को आज्ञा दी कि "बस, अब तुम मेरे निकट बैठे रहो। अब कहीं न जा सकोगे तुम।" लड़का चुपचाप बैठ गया, जैसे बहुत ही आज्ञाकारी और नेक हो। माता ने समझा अब सुधर गया वह, लेकिन जैसे ही वह अपने धन्धे में लगी और लड़के ने देखा कि माता की आँख उधर है, झट खिसकने लगा। अभी दो ही कदम गया था कि माता ने देख लिया – "बैठ यहाँ ! कहाँ जाता है ? बैठा रह इसी स्थान पर ! तू बाहर नहीं जा सकता।" लड़का फिर सुधरे हुए बालकों की भाँति बैठ गया। माता फिर काम में लगी। लड़का ताक में था कि कब अवसर मिले और भाग निकलूँ। माता ने फिर देख लिया–"कहाँ जाता है ? बैठा रह यहाँ ही ! जब तक तू प्रतिज्ञा नहीं कर लेता कि तू बाहर जाकर किसी को नहीं सतायेगा, तब तक तुझे इसी कैद में रहना पड़ेगा।" लड़का फिर भीगी बिल्ली बनकर बैठ गया। माता अपना तो काम करती ही थी, परन्तु दृष्टि लड़के की ओर रखती थी। अन्त में लड़के की चंचलता दूर हुई और उसने किसी को न सताने की प्रतिज्ञा की। तब माता ने उसे बाहर जाने की प्राज्ञा दे दी।

इसी प्रकार मन पर कड़ी दृष्टि रखनी होगी। जब तक यह बुरे संकल्पों को छोड़ देने की प्रतिज्ञा नहीं करता, तब तक इस पर कड़ी निगरानी रखने की आवश्यकता है। बार–बार अभ्यास करने से यह मन अपनी चंचलता छोड़ने और बुरे संकल्पों से दूर रहने पर बाधित हो जाता है। *क्रमशः*

महामृत्युञ्जयमन्त्र

● डॉ. रघुवीर वेदालंकार

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

(यजु. 3.60)

अर्थ–हम त्र्यम्बक का यजन करते हैं जो सुगन्धि तथा पुष्टिवर्धन है। वह उर्वारुक की भाँति मुझे मृत्यु से छुड़ा दे, अमृत से नहीं।

व्याख्या–इस मन्त्र को महा मृत्युन्जय मन्त्र कहा जाता है। यह प्रवाद भी है कि इसके जपने से मृत्यु से छुटकारा पाया जा सकता है तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। हम इन बातों पर नहीं जाते। हम यहाँ इस मन्त्र के शाब्दिक अर्थों पर विचार करेंगे।

लोक में शिवजी को भी त्र्यम्बक कहा जाता है तथा माना जाता है कि शिवजी त्रिनेत्रधारी दो आँखों के साथ–साथ उनके मस्तक पर भी एक आँख थी। इसीलिए वे त्र्यम्बक कह लाए। अनेक व्यक्ति इस मन्त्र को शिवजी की उपासना का मन्त्र मानते हैं। मन्त्र में ऐसा कुछ भी नहीं कहा गया है। न ही इस मन्त्र का शिवजी से कोई सम्बन्ध है तथा न ही शिवजी त्रिनेत्रधारी थे। यद्यपि यह इस लेख का विषय नहीं है, तथापि प्रसङ्गवश इस विषय में भी कुछ स्पष्टीकरण देना पाठकों के लिए लाभकारी होगा। वास्तविकता यह है कि शिवजी कैलाश पर्वत के राजा थे। इसीलिए उन्हें कैलाशपति भी कहा जाता है। वे परमयोगी थे। कैलाश का प्रदेश योगियों का ही प्रदेश है। उस समय हिमालय पर्वत का भी एक राजा था। उसकी कन्या उमा थी। पर्वतीय क्षेत्र में उत्पन्न होने के कारण उसे पार्वती भी कहा जाता था। हिमालय के राजा ने अपनी पुत्री पार्वती का विवाह शिवजी के साथ करना चाहा क्योंकि वे इसके लिए सर्वथा योग्य थे। समस्या यह थी कि शिवजी का ध्यान भंग कैसे किया जाए। दन्तकथा के अनुसार पार्वती को ही इस कार्य के लिए भेजा गया। पार्वती अपने हाव–भावों तथा प्रयत्नों से शिवजी को आकृष्ट करने लगी, किन्तु शिवजी की समाधि नहीं टूटी। केवल एक बार उन्होंने पार्वती की ओर देखा तो उनके मन में कुछ हलचल उत्पन्न हुई। शिवजी तुरंत समझ गए कि कामदेव उनपर आक्रमण करना चाहता है। शिवजी परम योगी तो ही, उन्होंने तुरंत ही अपनी मनः स्थिति को सँभालते हुए मन में उत्पन्न कामविकार को भस्म कर दिया। ऐसा वही व्यक्ति कर सकता है जिसका ज्ञानचक्षु खुला हुआ हो। शिवजी ज्ञानी ध्यानी थे अतः उन्होंने अपने मन में उत्पन्न स्वल्प कामविकार को तुरंत ही नष्ट कर दिया। यह है उनका कामदहन। अपने ज्ञानचक्षु से ही उन्होंने ऐसा किया था। इसीलिए उन्हें त्र्यम्बक कहने लगे। त्र्यम्बक शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है – त्रि+अम्बक। यहाँ प्रयुक्त अम्बक का अर्थ नेत्र नहीं है। इसका अर्थ आगे लिखा जाएगा अतः शिवजी को त्रिनेत्र धारी कहना उपयुक्त नहीं है। ज्ञानचक्षु को ही तीसरी आँख कहा जाता है।

त्र्यम्बक का अर्थ–त्रि+अम्बक। त्रि–तीन अम्बक शब्द संस्कृत की अम धातु से निष्पन्न है। अम धातु गति तथा रक्षा के अर्थ में है। इसके आधार पर महर्षि दयानन्द ने त्र्यम्बक के निम्न अर्थ किए हैं–

(1) त्रिषु लोकेषु अम्नति गतिं करोतीति त्र्यम्बक।

(2) त्रिषु कालेषु अम्बकं रक्षणं यस्य परमेश्वरस्य।

(3) त्रिषु कालेषु एकरसं ज्ञानं यस्य परमेश्वरस्य।

इस प्रकार त्र्यम्बक का अर्थ हुआ कि जो परमेश्वर तीनों लोकों में गति कर रहा है अर्थात् सर्वव्यापक है तथा भूत–भविष्य–वर्तमान तीनों कालों में ही सबकी रक्षा कर रहा है, वह त्र्यम्बक है। नेत्र का यहाँ कोई प्रकरण या सम्बन्ध नहीं है। उस त्र्यम्बक परमेश्वर का हम भजन करते हैं।

यजामहे–यजामहे का अर्थ यज्ञ करना जानकर कुछ लोग इस मन्त्र से यज्ञ भी करते हैं। ऐसा करना अच्छा तो है, किन्तु यह यजामहे का वास्तविक अर्थ नहीं है। कुछ लोग मोक्ष प्राप्ति के लिए इस मन्त्र का जप करते रहते हैं। यह जप करना भी अच्छा तो है, किंतु हमें यजामहे का अर्थ भी जान लेना चाहिए। यजामहे में 'यज्' धातु है, जिसका अर्थ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान है। परमेश्वर के पक्ष में इसका अर्थ होगा कि हम त्र्यम्बक का संगतिकरण करते हैं। उसकी उपासना करते हैं, ध्यान करते हैं, क्योंकि ध्यान उपासना के द्वारा ही परमेश्वर का संगतिकरण सम्भव है, अन्य कोई भी मार्ग इसके लिए नहीं है। इसलिए परमेश्वर का सान्निध्य करने के लिए उसका ध्यान–मनन करना ही होगा। जप के द्वारा ध्यान स्थिर होता है। इसलिए इस मन्त्र का जप किया जाता है। ध्यान रहे कि यह जप केवल मुख से न होना चाहिए, अपितु पूर्ण मनोयोग के साथ अपने आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में निमग्न कर देना चाहिए, तभी उसका संगति करण होगा। जप की विधि आगे लिखी जायेगी। यहाँ केवल शाब्दिक ही बतलाया जा रहा है।

> **यजामहे का अर्थ यज्ञ करना जानकर कुछ लोग इस मन्त्र से यज्ञ भी करते हैं। ऐसा करना अच्छा तो है, किन्तु यह यजामहे का वास्तविक अर्थ नहीं है। कुछ लोग मोक्ष प्राप्ति के लिए इस मन्त्र का जप करते रहते हैं। यह जप करना भी अच्छा तो है, किंतु हमें यजामहे का अर्थ भी जान लेना चाहिए। यजामहे में 'यज्' धातु है, जिसका अर्थ देवपूजा, संगतिकरण तथा दान है।**

सुगन्धिम्–इसका अर्थ भी प्रायः सुगन्ध अर्थात् यश वाला किया जाता है। यह भी वास्तविक अर्थ नही है। सुगन्धि में तीन शब्द है–सु+गम्+धि 'म्' को अनुस्वार होकर सुगन्धिं बन गया। सु का अर्थ अच्छा होता है। सरल भी इसे कहते हैं। यथा–कोई कहे कि यह मार्ग अथवा यह कार्य सुगम है। यहाँ सुगम का अर्थ सरल ही है। इसके विपरीत दुर्गम शब्द है। अर्थात् कठिन। इस प्रकार सुगन्धि का अर्थ हुआ–जो सुगमता=सरलता को धारण कर रहा है। **'धि'** का अर्थ धारण करता है। यथा जलधि जल को धारण करने वाला है समुद्र। यह शब्द **'डुधाञ् धारण पोषणयोः'** धातु से बना है। इसका अर्थ धारण तथा पोषण है। इस प्रकार सुगन्धि का अर्थ हुआ कि जो त्र्यम्बक परमेश्वर अपनी प्राप्ति के सुगम मार्ग का धारक है। अर्थात् सु=अच्छे तथा सरल मार्ग से ही उसे प्राप्त किया जा सकता है। कहा भी है–

'यदि पाप में तेरा दिल नही है तो प्रभु का मिलना भी मुश्किल नही है।'

सचमुच ऐसा ही है। पाप–पूर्ण मन वाले व्यक्ति लिए परमेश्वर की प्राप्ति असम्भव ही है। वह परमेश्वर का भजन = संगतिकरण कर ही नहीं सकता। शुद्ध मन से ही परमेश्वर की संगति प्राप्त की जा सकती है। कूड़े करकट से भरे गन्दे पात्र में यदि दूध भी डाल दिया जाए तो वह पवित्र दूध को भी अपवित्र कर देगा। यही अवस्था मन की है। हमारे मन में भी जन्म–जन्मान्तर के कुसंस्कार भरे पड़े हैं। इस जन्म के संस्कारों से उनमें और भी वृद्धि हो जाती है। अतः वह मन अपवित्र तथा चंचल बना हुआ है। परमेश्वर की संगति प्राप्त करने के लिए उसे पवित्र तथा स्थिर बनाना होगा। यदि उपासक श्रद्धापूर्वक परमेश्वर की भक्ति–ध्यान करे तो परमेश्वर स्वयं उसे सुगम–अच्छे मार्ग पर डाल देते हैं, क्योंकि वे उसके हृदय में ही विराजमान हैं। बस आवश्यकता है उनके भजन की, संगतिकरण की। हम तो दिन भर न जाने अच्छे–बुरे किन–किन व्यक्तियों की संगति करते रहते हैं। धन–वैभव–व्यापार की संगति करते रहते हैं। उनके विषय में ही सोचते रहते हैं। ऐसी अवस्था में परमेश्वर के साथ संगतिकरण कैसे होगा ? कहा भी है–

जब शत सहस्र इच्छाओं
से हृदय कलुषित होवे।
तब कहाँ प्रभु की ज्योति
से अन्तस् आलोकित होवे।

अतः यह आवश्यक है कि परमेश्वर की संगति सान्निध्य प्राप्त करने के लिए हमें अपने मन को कलुषित विचारों तथा कुसंस्कारों से मुक्त करना ही होगा।

क्रमशः

बी–266, सरस्वती विहार
दिल्ली–110034
मो. 9868144317

आओ ! योग को समझें और करें

● भद्रसेन

योग शब्द आजकल बहुत प्रचलित हो रहा है। वैसे योग शब्द का मूल **युज्** धातु है और अर्थ है–एकाग्रता, जोड़–मेल। चित्त की एकाग्रता की अपेक्षा आज स्वास्थ्य की दृष्टि से इसकी अधिक चर्चा चल रही है। जैसे कि–*'करो योग–रहो नीरोग।'* इस प्रसंग में यह दोहा विशेष ध्यान आकर्षित करता है।

"दुःख में सिमरण सब करें,
सुख में करें न कोय।
जो सुख में सिमरण करें,
तो दुःख काहे को होय।।"

अर्थात् रोगी होने पर हम जिस प्रकार औषधि सेवन, पथ्य–अपथ्य के प्रति सजग होते हैं। यदि स्वस्थ रहते हुए भी उतना ही सावधान रहें, तो रोगी ही न हों। अतः रोगी होने से पूर्व ही यदि स्वस्थ स्थिति में हम नियमित योग करें, योग युक्त प्राकृतिक व्यवस्थित जीवन जियें तो हम रोगी न होंगे या कम से कम होंगे इसीलिए प्राकृतिक, व्यवस्थित, योगयुक्त जीवन की चर्चा करते हुए गीता में कहा है।

"युक्ताहार विहारस्य
युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य
योगो भवति दुःखहा।।"

अर्थात् यदि हम सुखी रहना चाहते हैं, सुखभरा जीवन जीना चाहते हैं या योग करना चाहते हैं, तो हमें सर्वप्रथम अपने आहार, विहार, रहन–सहन, रोजमर्रा के कार्य (कारोबार) और सोने–जागने को युक्त, उपयुक्त, मर्यादित, व्यवस्थित, नियमित, प्राकृतिक करना चाहिए। तभी किसी का जीवन दुःख–रहित, सफल, सुखी होता है। इन पाँचों बातों को साधारण समझकर इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इनके पालन पर ही हम स्वस्थ रहते हैं तथा योग भी तभी ठीक ढंग से हो सकता है।

युक्त शब्द उसी धातु से बना है, जिससे योग बना है। अतः यहाँ युक्त का अर्थ है–ठीक, उपयुक्त, अनुकूल, समन्वित, सन्तुलित। युक्त का यह रूप प्रत्येक के वैयक्तिक जीवन में अपनी–अपनी स्थिति, प्रकृति के अनुसार ही होता है। हर एक की अपनी–अपनी आयु, क्षमता के अनुरूप ही किसी की अनुकूलता पहचानी जाती है। कई बार सबको एक ढंग से हाँकना उल्टा पड़ जाता है।

यही श्लोक स्कन्दपुराण का. पू. 41, 130 में भी आया है। मेरी दृष्टि से इस अर्थ की पुष्टि, गीता के निम्न श्लोक से भी होती है।

"एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ
स जीवति।।" 3,16

प्रजापति के चलाए इस प्राकृतिक चक्र = नियमों को जो नहीं अपनाता है, अपने जीवन में नहीं ढालता है–जैसे कि कम से कम सूर्योदय के साथ उठ जाना, शुद्ध वायु–जल का सेवन आदि अर्थात् कृत्रिम जीवन न जीना। प्रकृति से विरुद्ध जीवन जीने वाला अघायु पापभरी आयुवाला होता है क्योंकि वह कृत्रिम जीवन से अपनी आयु कम कर लेता है। ऐसा व्यक्ति कृत्रिम जीवन जीने से प्रायः अनेक रोगों से ग्रस्त रहता है। उसके साथ वह व्यक्ति इन्द्रियाराम = सुविधा–भोगी बन जाता है। सुविधा–भोगी अपने आपको कष्ट नहीं देना चाहता है। प्रातः उठने, स्वाद पर नियन्त्रण करने के लिए कुछ कष्ट सहना पड़ता है, तप तपना होता है। जैसे कि हम देखते है कि मानव सम्पर्क से बचे हुए पशु–पक्षी प्राकृतिक जीवन जीने से रोगी कम ही होते हैं और सुखी रहते हैं।

दिनचर्या, जीवनचर्या की ये पाँचों बातें ठीक होने पर ही शारीरिक, मानसिक योग, स्थिति, जीवन व्यवस्थित रहता है। अन्यथा व्यक्ति के जीवन में व्यवधान = अड़चन, बाधा आ जाती है, जैसे पेट में कब्ज़, गैस होना और मन में अधिक भटकाव, तनाव आ जाना। अनेक व्यक्तियों को स्वाभाविक जीवन जीने से गहरी नींद आती है और वे तरोताज़ा रहते हैं। अनेक निद्रा के लिए कई तरह के प्रयास करते हैं, अनेक तरह के पापड़ बेलते, दवाइयाँ लेते हैं, तब कहीं नींद आती है और कुछ को तब भी गहरी नींद नहीं आती।

दिनचर्या, जीवनचर्या की ये पाँचों बातें ठीक होने पर ही शारीरिक, मानसिक योग, स्थिति, जीवन व्यवस्थित रहता है। अन्यथा व्यक्ति के जीवन में व्यवधान = अड़चन, बाधा आ जाती है, जैसे पेट में कब्ज़, गैस होना और मन में अधिक भटकाव, तनाव आ जाना। अनेक व्यक्तियों को स्वाभाविक जीवन जीने से गहरी नींद आती है और वे तरोताज़ा रहते हैं। अनेक निद्रा के लिए कई तरह के प्रयास करते हैं, अनेक तरह के पापड़ बेलते, दवाइयाँ लेते हैं, तब कहीं नींद आती है और कुछ को तब भी गहरी नींद नहीं आती।

शरीर के भौतिक, प्रत्यक्ष होने से योग के आसन, प्राणायाम का देह पर सीधा प्रभाव होता है अर्थात् योग के आसन, प्राणायाम इन दोनों का पहले पहल यह प्रभाव होता है। तभी तो श्वेताश्वतर उपनिषद् में इसी दृष्टि से कहा है–**"लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्ण प्रसादः स्वर सौष्ठवं च। गन्धः शुभो मूत्र पुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।।"** 2, 13

योग का अभ्यास करने पर प्राथमिक रूप से यह प्रभाव होता है। **लघुत्वम्** = शरीर का हल्का–फुल्का होना, तरोताज़ा रहना, आलस्य का न होना। **आरोग्यम्** = रोग रहित, स्वस्थ रहना। **अलोलुपत्वम्** = शरीर का ढीलापन, फुलाव टूटना शुरु हो जाता है। **वर्णप्रसादः** = योगाभ्यासी की काया आकर्षक होने लगती है। **स्वर सौष्ठवम्** = ऐसे ही ध्वनि भी प्रिय होने लगती है, वह कर्कश नहीं रहती। **गन्धः शुभः** = उसके देह से दुर्गन्ध नहीं आती, अपितु अच्छी गन्ध आने लगती है। **मूत्र पुरीषमल्पम्** = योग की ओर प्रवृत्त हुआ व्यक्ति परिमित खाता–पीता है, अतः उसको थोड़ी मात्रा में मल–मूत्र आता है। योग करते रहने से उसको खाद्य–पेय पचते हैं। इसलिए दस्त जैसे रोग नहीं होते।

लाभ प्राप्ति–हर एक किसी प्रकार के लाभ की आशा से ही प्रत्येक प्रकार के कार्य को करता है। अतः योग की प्रक्रिया से लाभ प्राप्त करने के लिए योगदर्शनकार ने दो सूत्र निर्दिष्ट किए हैं। प्रथम है–**"स्थिरसुखमासनम्"** (2, 46) यहाँ आसन का अर्थ है–उस स्थिति, आकार में टिकना, रहना। जैसे कि मयूर–आसन में मोर जैसी स्थिति, आकृति में रहना। कोई आसन तभी लाभदायक होता है जब किया जाने वाला आसन कुछ देर लगातार किया जाए, वह आसन उतनी–उतनी मात्रा में उस रूप में हो, जिससे करते समय उसमें किसी प्रकार की जबरदस्ती, प्रतिकूलता, वाली बात किसी रूप में भी न हो जैसे कि जितना आसन सरलता से किया जा सके और उतनी देर ही किया जाए अर्थात् किसी आसन की स्थिति में कुछ देर रहें और उस आसन में रहना देह और समय की दृष्टि से उतना ही हो, जितना सरलता से हो सके। आसन के अभ्यास को धीरे–धीरे बढ़ाया जाए।

इसी के साथ दूसरा सूत्र है–दीर्घकाल–**"नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः"** अर्थात् लाभ प्राप्ति के लिए वह–वह उपाय, आसन आदि हम लम्बे समय तक नैरन्तर्य = नियमित रूप से लगातार करें। यह नहीं, कि एक दिन कर लिया, फिर छोड़ दिया। तीसरी बात यह भी है कि योग के उपाय को आदर पूर्वक करें। इन तीनों बातों का पालन करने से ही व्यवहार में आने वाली चीज़ का लाभ सामने आता है। ये सारी बातें प्राणायाम पर भी लागू होती हैं।

शरीर और इन्द्रियों की अपेक्षा मन अधिक सूक्ष्म है। **"इन्द्रियेभ्यः परा अर्थाः अर्थेभ्यश्च परं मनः"** कठ. 3/10। अतः मन को साधने के लिए विशेष यत्न करना चाहिए।

वैसे प्रत्येक मनुष्य का भी यह अनुभव है कि **"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ़म्"** गीता 6, 34। मन जहाँ चंचल है, वहाँ वह दूसरों को दबा लेता और बलवान तथा इतना दृढ़ है कि बार–बार व्यक्ति पर हावी हो जाता है अतः मन के अड़ियल, ढीठ होने से इसको वश में रखने के लिए यत्नशील रहना चाहिए।

जैसे कि कुछ को गहरी नींद आती है। ऐसे ही अनेक मन को वश में कर सकते हैं। बच्चों का मन निर्दोष, शुद्ध होता है अतः उनको खूब गहरी नींद आती है। ऐसे ही अपने मन को जब हम निर्दोष, निर्विकार, शुद्ध शान्त बनाते हैं तो उतना–उतना हम मन के संयम में सफल होते हैं। हाँ, मन को स्वाध्याय = अच्छे चिन्तन, सद्विचारों में व्यस्त रखने का यत्न करना चाहिए अन्यथा *"खाली मन शैतान का घर"* सिद्ध होता है।

182, शालीमार नगर
होशियारपुर–146001

सितारों के गुलाम

● पं. गंगा प्रसाद उपाध्याय, एम.ए.

सूर्या दास – देखो भाई, अब हम अंग्रेज़ों की गुलामी से छूट गये। अब हम स्वतंत्र हैं।

बुद्धि प्रकाश–ठीक तो है। एक गुलामी गई परन्तु कई प्रकार की गुलामी बाकी है। जब तक दूसरी गुलामियाँ रहेंगी हम कभी स्वतंत्र नहीं कहलाये जा सकते।

सूर्या दास–क्या हम स्वतंत्र नहीं हैं ? हम अपने, देश के आप मालिक हैं। हमीं में से प्रधान मंत्री हैं, हमीं में से राष्ट्रपति हैं, हमी में से कलक्टर और कमिश्नर हैं। हमीं में से गवर्नर भी हैं।

बुद्धि प्रकाश – यह तो सच है परन्तु जब तक देश में अविद्या का राज है तब तक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती, विद्या की गुलामी सबसे बड़ी गुलामी है।

सूर्या दास – आपका क्या मतलब है ! हम किसके दास हैं ?

बुद्धि प्रकाश–लीजिये ! भारतवर्ष में सबसे बड़ी दासता है सितारों की। बच्चा पैदा होते ही ज्योतिषीऐ पूछते हैं कि इसके ग्रह कैसे हैं ?

सूर्या दास–तो क्या जन्म–पत्र नहीं बनवाना चाहिये ? फिर आयु की गणना कैसे होगी ? कैसे मालूम होगा कि अमुक आदमी इतना बड़ा है ?

बुद्धि प्रकाश – आयु के लिये साधारण तिथि से काम चल सकता है। लाल–पीले जन्म–पत्र की क्या आवश्यकता है ? यह जन्म–पत्र नहीं शोक–पत्र है। बालक के माता–पिता डर जाते हैं कि बालक के अमुक ग्रह खराब हैं।

सूर्या दास – भाई साहब, पहले से ग्रहों का कोप मालूम हो जाने से ग्रहों को शान्त कर सकते हैं।

बुद्धि प्रकाश – ग्रहों की शान्ति का क्या अर्थ ? मनुष्य का भाग्य उसके कर्मों से मिलता है। कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना है। गीता में लिखा है : –

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

ग्रहों का कर्मफल से क्या सम्बन्ध ! ग्रह तो अपनी चाल चलते हैं। उनकी चाल तो आकाश में नित्य ही होती रहती है। उन्हीं 'ग्रहों' में अच्छे आदमी अच्छे कर्म करते हैं, बुरे आदमी बुरे।

ग्रहों की शान्ति तो ठगविद्या है। ज्योतिषियों ने लोगों से दान दक्षिणा लेने के लिये मन मानी बात गढ़ ली है। यदि शनिश्चर नक्षत्र तुमसे नाराज़ है तो पंडित जी को दक्षिणा देकर कैसे प्रसन्न होगा? भला क्या पंडित जी शनिश्चर के एजेन्ट या वकील हैं ? या शनिश्चर के कोई रिश्तेदार हैं ? हमको तो यही दीखता है कि पंडित जी ही स्वयं शनिश्चर हैं जो पुरश्चरण की सामग्री है वह पंडित जी के ही घर रह जाती है। शनिश्चर तक नहीं पहुँचती।

सूर्या दास–जी, देखिये। लड़के–लड़की का विवाह भी जन्म–पत्र देखकर होता है। ग्रह मिलने से वैवाहिक जीवन सुख से बीतता है।

बुद्धि प्रकाश–बिल्कुल झूठ ! केवल थोड़े मूर्ख हिन्दुओं को छोड़, संसार भर के लोग बिना जन्म–पत्र मिलाये विवाह करते हैं और सुखी रहते हैं। ग्रहों को मिलाकर विवाह होने पर लाखों बाल विधवायें हो जाती हैं, लाखों रंडुए हो जाते हैं।

बुद्धि प्रकाश–हम भी यही कहते हैं, भाग्य अपने कर्मों से बनता है। ग्रहों के प्रभाव से नहीं। एक ही मुहूर्त में लाखों बच्चे उत्पन्न होते हैं। कोई राजा होता है कोई आयु भर रंक रहता है। ग्रह न कुछ बिगाड़ सकते हैं न ही बना सकते हैं। जब भाग्य पर ही निर्भर होना है तो नक्षत्रों और ग्रहों का मुँह ताकना मूर्खता है और जो मूर्खों को ठगते हैं वह ठग हैं। यदि ज्योतिष का फल ठीक होता और ग्रहों की पूजा का कुछ लाभ होता तो ज्योतिषी लोग स्वयं सबसे सुखी होते। उनके घर में कुसमय मृत्यु न होती या यह मृत्यु को पुरश्चरण द्वारा टाल सकते।

सूर्या दास–ज्योतिषी पहले से ही बता देते हैं कि अमुक दिन ग्रहण पड़ेगा और उनकी बात सच निकलती है।

बुद्धि प्रकाश–यह तो ग्रहों की चाल का हिसाब है। भूगोल के साधारण विद्यार्थी भी जानते हैं कि पृथ्वी अपनी कीली पर भी घूमती है और सूर्य के चारों ओर भी, और चाँद पृथ्वी के चारों घूमता है। जिस रात को पृथ्वी सूर्य और चाँद के बीच इस प्रकार आ जाती है कि सूर्य की किरणों को पृथ्वी बीच में रोक लेती है और चाँद तक नहीं आने देती उस दिन चाँद ग्रहण पड़ जाता है और जिस दिन चाँद पृथ्वी और सूर्य के इस प्रकार बीच में आ जाता है कि सूर्य की किरणों को चाँद बीच में रोक लेता है और पृथ्वी तक नहीं आने देता उस दिन को सूर्य ग्रहण पड़ जाता है। स्कूलों में इस प्रकार के गोलों के यंत्र दिखाये जाते हैं जिससे ठीक बात समझ में आ जाती है।

सूर्या दास – तो क्या राहु और केतु राक्षसों के आक्रमण की बात झूठी है ?

बुद्धि प्रकाश– पंडित जी आप विद्वान् होकर ऐसी अनर्गल बातों पर विश्वास करते हैं। यदि राहु और केतु कोई वास्तविक राक्षस होते तो कोई बतावे कि वह कहाँ रहते हैं ? क्या किया करते हैं ? अमावस्या और पूर्णिमा को ही क्यों आक्रमण करते हैं ? और आपके गंगा नहाने या मेहतरों को दान देने से उनका प्रभाव कैसे मिट जाता?

सूर्या दास – देखिये, अभी कुछ दिन हुये नक्षत्रों में गड़बड़ हो गई थी। काशी के पण्डितों ने बहुत से पुरश्चरण कराये। सारे भारतवर्ष में कोलाहल मच गया। बड़े–बड़े यज्ञ किये गये।

बुद्धि प्रकाश – यह कोलाहल तो केवल मूर्ख हिन्दुओं के डराने और उनको लूटने के लिये था। आप जैसे डर गये और ज्योतिषियों की ठगाई से देश भर के लोगों में चिन्ता की लहर फैल गई। बुद्धिमानों ने कुछ भी चिन्ता नहीं की, न कुछ कोलाहल हुआ। यही तो सितारों की गुलामी है। बच्चा पैदा होने से लगाकर मृत्यु तक ज्योतिषी उसका को पीछा नहीं छोड़ते। नाम रखेंगे तो सितारों को पूछकर ! मुन्डन करेंगे तो सितारों को पूछकर, विवाह करेंगे तो सितारों को पूछकर :–

अंजुम शनास को भी खलल है दिमाग का।
पूछो अगर जमीं की, कहे आस्मां की बात।।

सूर्या दास – बड़े–बड़े प्रोफेसर, जज, वकील सभी तो ज्योतिषियों से ग्रह दिखाते हैं और जन्म–पत्र बनवाते हैं।

बुद्धि प्रकाश – यह न पूछिये। इसी को तो भेड़चाल कहते हैं। यह लोग स्कूलों में कुछ और पढ़ते हैं और घर में आकर मूर्ख बन जाते हैं। वह गणित, ज्योतिषी आदि सभी विद्याओं को पढ़ते हैं परन्तु अपना विश्वास उनका पीछा नहीं छोड़ता। ज्योतिषी लोग उनकी स्त्रियों को बहकाया करते हैं। जिन देशों में नक्षत्रों पर विश्वास नहीं किया जाता वहाँ ज्योतिषियो की, कुछ नहीं चलती। क्या कोई बुद्धिमान सेनापति ज्योतिषियों से मुहूर्त दिखाकर लड़ाई करेगा ? क्या कोई बुद्धिमान वकील ज्योतिषियों से पूछकर मुकदमें लड़ेगा ? क्या कोई बुद्धिमान व्यापारी ज्योतिषियों से पूछकर व्यापार करेगा ? क्या कोई कॉलिज का विद्यार्थी परीक्षा उत्तीर्ण होने के लिये ज्योतिषियों और जन्म–पत्र पर भरोसा करेगा ? पंडित जी, महाराज ! आप लोगों के प्रसाद से भारतवर्ष सैकड़ों वर्षों से भूत–चुड़ैलों और सितारों का गुलाम रह चुका। अब दया कीजिये।

महात्मा गाँधी, पं. जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य देशभक्तों के आत्म–त्याग से देश स्वतंत्र हुआ है ज्योतिषियों की कर्तूतों से नहीं। अब भी यदि देश को शत्रुओं के हाथ से बचा सकेगा तो चतुर नीतिज्ञ और वीर सेनाध्यक्ष ही बचा सकेंगे। ज्योतिषियों के पोथी पत्रे धरे के धरे रह जायेंगे। नक्षत्र विचारे तो हमसे कुछ कहते, सुनते नहीं। वह क्या कहें ? वह तो जड़ हैं, चेतन नहीं। हमको डर ज्योतिषियों का है जो बिना वकालतनामे के ग्रहों के वकील बनें हुये हैं। कैसी हँसी की बात है कि शनिश्चर को तेल की दक्षिणा देने से शनिश्चर देवता का कोप दूर हो जाए।

देहात में ज्योतिषियों की चाल चल जाती है अतः हमारे ग्रामों के लोगों को इनसे सावधान रहना चाहिये। स्त्रियों और बालकों को भी चाहिये कि इनके पास न फटको और एक नियम को दृढ़ गाँठ बाँधकर याद कर लें कि अच्छे कर्मों का अवश्य अच्छा फल मिलेगा और बुरे कर्मों का बुरा। झूठ, मक्कारी, चोरी, जारी, इनसे बचिये और ग्रहों के चक्कर में मत पड़िये।

ट्रैक्ट विभाग, आर्य समाज चौक, इलाहाबाद–3 से प्रकाशित द्वितीय माला, ट्रैक्ट संख्या–28

ग्रहों की शान्ति तो ठगविद्या है। ज्योतिषियों ने लोगों से दान दक्षिणा लेने के लिये मन मानी बात गढ़ ली है। यदि शनिश्चर नक्षत्र तुमसे नाराज़ है तो पंडित जी को दक्षिणा देकर कैसे प्रसन्न होगा? भला क्या पंडित जी शनिश्चर के एजेन्ट या वकील हैं ? या शनिश्चर के कोई रिश्तेदार हैं ? हमको तो यही दीखता है कि पंडित जी ही स्वयं शनिश्चर हैं जो पुरश्चरण की सामग्री है वह पंडित जी के ही घर रह जाती है। शनिश्चर तक नहीं पहुँचती।

वैज्ञानिक दृष्टि और ईश्वर

● जॉन लियो ऐबरनेथी

गवेषणा और रसायनविद् ऍम.ऍस.सी., पी–एच.डी., नौर्थवैस्टर्न विश्वविद्यालय। हम्बोल्ट स्टेट कॉलेज और कैलिफ़ोर्निया स्टेट पौलीटेक्निकल कॉलेज में शिक्षक, फिर कैलिफोर्निया के फ्रैस्नो स्टेट कॉलेज में रसायन के प्राध्यापक 'जर्नल ऑफ कैमिकल ऍजुकेशन' के सह सम्पादक। शर्करावर्गीय पदार्थों (कार्बो–हाइड्रेट्स) आदि के विशेषज्ञ।

आजकल के युग में हम समस्याओं को तेज़ छुरे की–सी धार से हल करने तक पहुँच गए हैं, यहाँ तक कि एक बारगी ही उसकी स्पष्ट परिभाषा कर देते हैं और उनका अर्थ निकल आता है। हमने यह भी जान लिया है कि शब्दों में से हम जो अर्थ ग्रहण करते हैं वे हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भर होते हैं–और वे पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं–जिह्वा, त्वचा, नासिका, श्रोत्र और चक्षु। हममें से हरेक को ज़रुरी तौर से, कम से कम सामान्यतया, भिन्न वातावरण और परिस्थितियों में रहना पड़ता है इसलिए सीमातीत अवस्थाओं में यह भी हो सकता है कि 'मकान' शब्द का अर्थ चिहुआहुआ नामक नगर के बाहरी अंचल में रहने वाले लोगों के लिए जहाँ एक गुफा हो, वहाँ कैलीफोर्निया के किसी अखबार के लिए किसी पहाड़ी की बगल में बना विशाल किलानुमा भवन हो।

"क्या ईश्वर है ?" इस प्रश्न का उत्तर ईश्वर शब्द के अर्थ की परिभाषाओं में ही दिया जाना चाहिए। मुझे यह कहने दीजिए कि ईश्वर से हमारा अभिप्राय केवल संसार के अन्दर विद्यमान व्यवस्था और क्रम से ही हो तो हम उस चीज़ की बात करते हैं जिसमें साम्यवादी विश्वास करते हैं। संसार में निहित क्रम और व्यवस्था में तो उनका भी विश्वास है। किन्तु वे यह भी जानते हैं कि आप अनन्त काल तक तत्त्वों की नियतकालिक तालिका के आगे नतमस्तक होकर प्रार्थना भले ही करते रहें, किन्तु उन तत्त्वों में से एक भी, स्वतन्त्र रूप से या किसी अन्य तत्त्व के साथ मिल कर, आपकी उस प्रार्थना का उत्तर देने के लिए स्वयं कभी एक अंगुलि तक नहीं हिलाएगा, भले ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आपकी वह प्रार्थना कितनी ही सच्चे अन्तःकरण से क्यों न की गई हो, कितनी ही आत्मस्फूर्त क्यों न हो। न ही मेरा अभिप्राय कल्पनालोक के उस परमात्मा से है जिसे संसार के लगभग सभी धर्म स्वीकार करते चले आ रहे हैं। यदि किसी परमात्मा में मेरा कण भर भी विश्वास हो सकता है तो वह **केवल वही परमात्मा है जिसे ब्रह्माण्ड के इस छोटे से अंश–पृथ्वी पर रहने वाले हममें से हरेक प्राणी के सुख–दुःख की चिन्ता हो।**

क्या यह ईश्वर सत्य है या यह भी कल्पना की ही औलाद है ? क्या पृथ्वी पर रहने वाले मानवों के इतिहास की काल–धारा में कुछ ऐसे पैगम्बर या महापुरुष हुए हैं जिन्होंने अपनी आत्मानुभूति से उसकी सत्यता को स्वीकार किया हो? इन प्रश्नों के साथ ही यह प्रश्न भी जुड़ा है कि क्या वे महापुरुष 'सामान्य मानवों से कुछ अधिक हैं ?' संसार के सम्बन्ध में अपने विचारों का हम किस ढंग से समन्वय करते हैं, वह इस बात पर निर्भर है कि हम इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर कैसे देते हैं ? किसी व्यक्तिगत परमात्मा की सत्ता को सिद्ध करने या असिद्ध करने के लिए भी हम उसी वैज्ञानिक विधि को अपना सकते हैं।

हम परमात्मा को प्रेम का प्रतिरूप कह सकते हैं परन्तु वह तो आत्मा है और आत्मा में अस्थि-मांस मज्जा नहीं होते। मान लीजिए कि आप परमात्मा हैं और देश-काल के आयाम सम्बन्धी धारणाओं से आप शून्य हैं, तब अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सीमित अनुभवों से बँधे और विश्व के ज्ञान से सर्वथा रहित आप यदि मानव प्राणियों के समक्ष आध्यात्मिक चीज़ों की व्याख्या करने लगें, तो आप क्या करेंगे ? आप आध्यात्मिक चीज़ों का वर्णन पाँचों इन्द्रियों और चार आयामों की परिभाषाओं में ही करेंगे और बीच में काफी खाली स्थान रहेगा।

यदि मैं यह मान लूँ कि वे सब पैगम्बर या अवतार केवल सामान्य मानवमात्र थे और उनके बारे में जो चमत्कारिक घटनाएँ बयान की जाती हैं वे सब गपोड़बाजी हैं, तब मैं ज्ञानेन्द्रियों से जानने योग्य इन्द्रियगोचर संसार की ही कल्पना करुँगा और इस विश्व का निर्माण कैसे हुआ इस बारे में तरह–तरह के साहसिक अनुमान करुँगा। वैज्ञानिक विधि में जहाँ अरस्तू (335 ई.पू.) का निगमानिक तर्क ***(डिडक्टिव लौजिक)*** शामिल है, वहाँ सर फ्रांसिस बेकन (1620 ई.) का आगमनिक तर्क ***(इंडक्टिव लौजिक)*** भी शामिल है। निगमानिक तर्क में मैं किसी बड़े या छोटे आधार–वाक्य से परिणाम तक पहुँचता हूँ। उदाहरण के लिए, कार्बन एक यौगिक न्यूट्रल परमाणु है, इसलिए इसमें भी छह इलेक्ट्रोन हैं। आगमनिक तर्क में मैं तथ्यों से नियमों या परिकल्पनाओं (जिनमें अभ्युपगम या अनुमान, या सापेक्ष वैज्ञानिक सत्य निहित होते हैं) तक पहुँचता हूँ।

यदि इन 'सत्यों' से निकले निष्कर्ष युक्तियुक्त हों, तो परिकल्पना का आधार मजबूत हो जाता है और तब वह परिकल्पना (Hypothesis) एक स्थापना या मत (Theory) बन जाती है। जितने ज्ञेय तथ्य हैं वे ऐसे इन्द्रियानुभवों के (या वैज्ञानिक परिभाषाओं में कहें, तो परीक्षणों के) परिणामों के विवरणमात्र हैं जिन्हें पुनः–पुनः प्रतीत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, यह एक तथ्य है कि पानी 11.1 प्रतिशत हाइड्रोजन और 88.9 प्रतिशत आक्सीजन के मेल से बना है क्योंकि विभिन्न परीक्षणों से यह परिणाम बारम्बार प्राप्त किया जा सकता है और नियम क्या है–ज्ञात तथ्यों का साधारणीकरण मात्र। उदाहरण के लिए, निश्चित रचना का जो नियम है उससे इसी बात का साधारणीकरण होता है कि प्रत्येक शुद्ध यौगिक द्रव्य या (compound) (जैसे पानी, खाने का नमक और खाने की चीनी आदि) में संघटना का प्रतिशत अनुपात वही रहता है जितना उसके घटक तत्त्वों का वजन होता है।

आखिर मत या वाद भी एक तरह की मानसिक तस्वीरें हैं जो नियमों की व्याख्या करती हैं। हमारे आधुनिक विचार जगत् में जो मुख्य सिद्धान्त प्रचलित हैं, वे ये हैं–गत्यात्मक आणविक सिद्धान्त (Kinetic Molecular Theory), पारमाणविक सिद्धान्त (Atomic Theory), विकासवाद का सिद्धान्त (Theory of Evolution) सापेक्षवाद का सिद्धान्त (Theory of Relativity), और क्वांटम सिद्धान्त (Theory of Evolution)। पारमाणविक सिद्धान्त मूलतः निश्चित रचना के नियम पर और गुणित अनुपात के नियम पर आधारित था। डॉल्टन (1806) के मूल सिद्धान्त (या परिकल्पना) के अपूर्ण सत्यों में तब सुधार करना पड़ा जब यह पाया गया कि अणुओं का और छोटे खंडों (इलैक्ट्रोन, न्यूट्रोन आदि) में विभाजन हो सकता है और तब आइसोटोपों (हाइड्रोजन जितने ही हल्के और भारी) की खोज की गई।

ये सिद्धान्त ही हमें उस क्रमबद्ध और व्यवस्थित ज्ञान की ओर ले जाते हैं जो विज्ञान कहलाता है और **जब विश्व के साथ मानवीय सभ्यताओं का वर्णन करने वाले विज्ञानों का एकीकरण किया जाता है तब वह फिलासफी या दर्शन, बन जाता है।** यदि धर्मों को केवल गपोड़बाजी ही मान लिया जाए तो दर्शन भी जड़वादी बन जाएगा। तब भलाई और बुराई का कोई पूर्ण अर्थ नहीं रहेगा। केवल मैं या आप किसी चीज़ को भलाई कहते हैं तो इतने मात्र से वह भली नहीं हो सकती। तब मनुष्य का मनुष्य के प्रति व्यवहार बिल्कुल तटस्थ होगा, जैसे कि किसी जानवर का या किसी पौधे का होता है।

हम परमात्मा को प्रेम का प्रतिरूप कह सकते हैं परन्तु वह तो आत्मा है और आत्मा में अस्थि–मांस मज्जा नहीं होते। मान लीजिए कि आप परमात्मा हैं और देश–काल के आयाम सम्बन्धी धारणाओं से आप शून्य हैं, तब अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों के सीमित अनुभवों से बँधे और विश्व के ज्ञान से सर्वथा रहित आप यदि मानव प्राणियों के समक्ष आध्यात्मिक चीज़ों की व्याख्या करने लगें, तो आप क्या करेंगे ? आप आध्यात्मिक चीज़ों का वर्णन पाँचों इन्द्रियों और चार आयामों की परिभाषाओं में ही करेंगे और बीच में काफी खाली स्थान रहेगा। तब स्वर्ग एक ऐसे नगर की तरह होगा जिसमें सोने की पारदर्शक सड़कें बनी हुई हैं और मणियों और मोतियों के दरवाजे बने हैं और इतने बड़े–बड़े प्रासाद हैं कि उनमें हज़ारों आदमी एक साथ समा सकते हैं।

परमात्मा के नाम पर एकत्र हुए आस्तिकों के बीच में परमात्मा विद्यमान है, इस तथ्य से यह ध्वनित होता है जैसे कि कोई अत्यन्त प्रिय मित्र विद्यमान हो जो आँखों से तो ओझल हो किन्तु उससे प्रेमालाप किया जा सकता हो। **सच तो यह है कि परमात्मा की उपस्थिति इससे भी कहीं अधिक स्पष्ट है किन्तु वह केवल भौतिक इन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता, उसका थोड़ा–सा आभास मात्र हो सकता है।** जिस प्रकार की हमारी ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ या पाँचों कर्मेन्द्रियाँ हैं, यदि इसी प्रकार की हमारी दस इन्द्रियाँ और होती और वे सब परस्पर उतनी ही भिन्न होती जितनी आँख कान से है, तो

शेष पृष्ठ 08 पर ☞

कभी शरीर से भी बाहर निकल कर देखो

● डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

"श्रीमन्! ये क्या कह रहे हैं आप, 'कभी शरीर से भी बाहर निकल कर देखो' क्या कोई शरीर से बाहर निकल सकता है ?"

"हाँ, क्यों नहीं निकल सकता, महोदय!"

"जब कोई वस्तु शरीर से बाहर निकल गई तो अन्दर बचा ही क्या ?"

"बहुत सारी ऐसी वस्तुएँ होती हैं जो शरीर में रहते हुए भी उससे भिन्न होती हैं, उन पर पंचभौतिक शरीर का प्रभाव नहीं पड़ता।"

"श्रीमन्, कोई उदाहरण प्रस्तुत कीजिए।"

"जैसे एक पक्षी दिन भर पेड़ों की टहनियों पर फुदकता रहता है और रात में अपने घोंसले पर टिक जाता है वैसे ही मन रूपी पक्षी भी अहर्निश संसार, ब्रह्माण्ड में भटकता रहता है और केवल स्वप्न या सुषुप्ति अवस्था में शरीर रूपी घोंसले में विश्राम करता है। उस मन रूपी पक्षी पर शरीर रूपी घोंसले का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि वह शरीर से भिन्न हैं।"

"पर सारे सांसारिक सुख तो शरीर तक सिमटे हुए हैं।"

"पर सोचा है, कौन है इसका भोक्ता ? जब तक वह सक्रिय है, तभी तक भोग्य पदार्थ हैं। वह शरीर में रहते हुए भी शरीर से भिन्न है, उसी को 'मन' की संज्ञा दी गई है।"

"कोई शरीर में रहते हुए उससे अलग कैसे हो सकता है?"

"क्या यह मन जागते हुए, सोते हुए शरीर से अलग होकर दूर-दूर की सैर नहीं करता? क्या शयन कालीन वेद मंत्रों में नहीं कहा गया-**'यज्जाग्रतो दूरमुदैतिदेवंतदुसुप्तस्य तथैवेति'** और फिर भगवान से प्रार्थना की गई है-**'तन्मे मनः, शिव संकल्पमस्तु।'**

यदि मन शरीर तक सिमटा रहे तो इसमें बुराई क्या है?"

"पर इसमें भलाई भी तो नहीं है। यदि मनुष्य का मन शरीर तक सिमट कर रह जाए तो वह शारीरिक सुखों तक सिमट कर रह जायेगा। वह पशुवत् व्यवहार करने लगेगा।"

"तो यह भी स्पष्ट कर दीजिए कि मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ?"

"महाशय! मनुष्य और पशु में यही अन्तर है कि पशु का मन शारीरिक सुखों और आवश्यकताओं से अलग नहीं हो पाता। वह शरीर तक ही सीमित रह जाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य पशुवत् शारीरिक या सांसारिक वस्तुओं के प्रति अनुरक्त हो जाता है उसे नरपशु कहा जाता है क्योंकि वह धर्म से हीन होता है। इसी कारण हमारे शास्त्रों में कहा गया है-**"धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।"**

'मनुष्य और पशु ये दोनों शब्द समानार्थक हैं या इनके भिन्न- भिन्न अर्थ हैं?

"इनके भिन्न-भिन्न अर्थ हैं श्रीमन् ! जो सोच-समझ कर विवेक पूर्वक कर्म करता है उसे मनुष्य कहते हैं-**'मत्वा कर्माणि सीव्यति'** परन्तु जो केवल प्रत्यक्ष को देखता मात्र है, विचार नहीं करता, उसे पशु कहते हैं-**'पश्यतीति पशुः'**

"जब आपने इतना बता ही दिया तो शरीर और मन के अन्तर को भी स्पष्ट कर दीजिए।"

सुनिये **"शीर्यते इति शरीरः"** जो प्रतिक्षण जीर्ण-शीर्ण होता रहता है, जो क्षण भंगुर है, पंच भौतिक तत्त्वों से निर्मित है उसे शरीर कहते हैं। वह आत्मा का इसी लोक का वाहन है। जहाँ तक मन का प्रश्न है। मन की परिभाषा है-**'संकल्प विकल्पात्मकं मनः'** अर्थात् विचारों के सतत प्रवाह को मन कहते हैं। इसका सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से होता है। अन्तः करण चतुष्टय में मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार आते हैं। सारा खेल ही मन का है। कबीरदास जी के शब्दों में-***'मन के हारे हार है, मन के जीते जीत'***

"आपने अपने आलेख का शीर्षक रखा है-'कभी शरीर से बाहर निकल कर देखो' इस शीर्षक के माध्यम से आप संसार को क्या संदेश देना चाहते हैं?"

"महोदय!, अज्ञानी व्यक्ति का समस्त जीवन शरीर तक सीमित रहता है। वह भोग, विलास, काम-वासना, ईर्ष्या-घृणा आदि तक सिमटा रहता है। उसे न तो इहलोक की चिन्ता रहती और न परलोक की। वह संसार में जैसे आया था, वैसा ही चला जाता है। वह पुण्यार्जित नहीं कर पाता परन्तु जो व्यक्ति शरीर से बाहर निकल जाता है वह आत्मा के स्वरूप को समझ लेता है। वह मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को सोपान बनाकर आध्यात्मिकता के उच्च शिखर पर आरूढ़ हो जाता है, आत्मा और परमात्मा की उच्चता को स्पर्श कर लेता है।

"जिस शरीर को हम मन का वाहन मानते हैं, आत्मा के निकल जाने पर उस शरीर का क्या होता है?"

"होना क्या है, जब आत्मा रूपी पक्षी फुर्र से उड़ जाता है तो शरीर शुष्क ढूँठ के समान पड़ा रह जाता है उस ढूँठ (निर्जीव शरीर) को श्मशान की लकड़ी जला कर खाक बना देती है।"

"इतने मूल्यवान् शरीर की इतनी दुर्गति?"

मान्यवर! विवेकवान् व्यक्ति तो इस मनुष्य शरीर को ईश्वर का अमर वरदान या मूल्यवान धरोहर समझते हैं। वे इसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का साधन मानते हैं इसीलिए संस्कृत साहित्य में कहा गया है-**'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्'** तुलसीदास जो भी कह गए हैं-**'बड़े भाग मानुष तन पावा'** परन्तु जो अज्ञानी व्यक्ति इस मूल्यवान शरीर के महत्त्व को नहीं समझते उनके लिए यह शरीर भोग-विलास का साधन मात्र है। वे सद्गति और दुर्गति के अन्तर को नहीं समझ पाते।"

"थोड़ा यह स्पष्ट कर दीजिए कि स्थूल शरीर को छोड़ कर कौन उड़ान भरता है ?"

"उड़ान भरने का काम करती है- मनुष्य की कल्पना शक्ति। मनुष्य भौतिक शरीर से कल्पना के पंखों से उड़ान भर कर साधना, सृजनात्मकता, स्वाध्याय और सेवा भाव के अमृतफल को प्राप्त कर सकता है और यही अमृत-फल परलोक यात्रा में जीविकोपार्जन का साधन बनता है।"

बहुत अच्छी बात है। अब मैं भी शरीर से बाहर निकलने का प्रयास करता हूँ।"

"महाशय! यह चुटकी का काम नहीं है। शरीर के अहंभाव की दीवार को तोड़ने के लिए साधना, और स्वाध्याय के हथौड़े चलाने पड़ते हैं तभी इस मजबूत दीवार को भेदा जा सकता है, तभी शरीर से बाहर निकल पाओगे।"

"श्रीमन्! यदि मनुष्य इहलोक में, इस शरीर की दीवार को भेदने में समर्थ हो गया तो?"

"तो यह आत्मा रूपी पक्षी फुर्र से उड़कर परलोक की आनन्दमयी मुंडेर पर बैठने का सौभाग्य प्राप्त करेगा। अब आगे बताने के लिए बचा ही क्या है?"

230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)
मो 9639149995

☞ पृष्ठ 07 का शेष

वैज्ञानिक दृष्टि और...

इस विश्व की हमारी वर्तमान व्याख्या भी कितनी भिन्न होती।

जड़वादी विचारधारा में भलाई और बुराई का कोई पूर्ण अर्थ नहीं है। मानवीय जीवन को बमों की वर्षा करके अस्तित्वशून्य बना देने में भी कोई बुराई नहीं होगी क्योंकि आखिर किसी न किसी प्रकार एक दिन समस्त जीवधारियों का अन्त तो हो ही जाना है। शायद हज़ारों या लाखों ग्रह-नक्षत्र, जिनमें हमसे उत्कृष्ट जीवधारियों का अस्तित्त्व सम्भव है, अत्यन्त गरम होकर या अत्यन्त ठंडे होकर, या किसी सूक्ष्म ब्रह्माण्ड-किरण से नष्ट होकर दुःखद अवसान को प्राप्त हो जाएँ, तो भी क्या हर्ज है। किन्तु यदि परमात्मा ने विशिष्ट आप्त पुरुषों के माध्यम से इतिहास के किसी समय विशेष में मानव मात्र को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में ज्ञान या उपदेश दिया है तो भलाई और बुराई का अर्थ स्पष्ट और पूर्ण हो जाता है तभी पाप से बचने को कर्त्तव्य बताया जा सकता है। **पूर्णता के लिए विज्ञान को भी इस प्रकार के सच्चे परमात्मा को मानना ही चाहिए।**

जिन लोगों ने द्रव्य और ऊर्जा को ही संसार के अन्तिम तत्त्वों के रूप में स्वीकार किया है और जिनके प्रवक्ता तथाकथित विज्ञान के नाम पर मानव जाति को वह उपदेश दे रहे हैं कि मनुष्य को अपने आपको सबसे ऊपर समझना चाहिए और प्रेम, सहानुभूति, दया और श्रद्धा जैसी 'अवास्तविक' चीजों की सर्वथा उपेक्षा कर देनी चाहिए, उनके कह देने मात्र से प्रेम, दया और श्रद्धा कभी संसार से समाप्त नहीं हो सकते। ये सब मानवीय भावनाएँ भी उतनी ही यथार्थ हैं जितना विज्ञान का कोई अन्य सिद्धान्त। किसी भी मननशील वैज्ञानिक को उनकी यथार्थता का भान हुए बिना नहीं रह सकता।

पं. क्षितीश वेदालंकार ग्रन्थावली खण्ड-1 के 'ईश्वर : संसार के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की दृष्टि में, खण्ड से साभार

'पुरुष' विधाता की सुकृति

● डॉ. सुशील वर्मा

ऐतरेय उपनिषद में एक कथानक के अनुसार सृष्टि की रचना के समय अकेला आत्मा ही था। आत्मा ने ईक्षण से लोकों का व अन्य नाना रूप सृष्टि का सर्जन किया। विराट्–पुरुष की रचना के पश्चात् चार लोकों को बनाकर 'अग्नि' 'वायु', 'आदित्य', 'दिशाएँ', 'वनस्पति', 'चन्द्रमा', 'मृत्यु' तथा 'जल' इन आठ लोकपालों को अर्थात् ब्रह्माण्ड के आधारभूत आठ तत्त्वों को विराट् पुरुष से रचा। ये सभी लोकपाल संसार–रूपी समुंदर में तो आ गए परन्तु उन्हें कोई अपना ठिकाना नहीं मिला। विधाता ने गाय, घोड़ा उनके ठिकाने के लिए प्रस्तुत किए परन्तु उन्हें ये पसन्द नहीं आए तो 'पुरुष' को रचकर लाया गया। वे लोकपाल सभी बोल उठे 'अहो! यह अच्छा बना है, निःसन्देह 'पुरुष' ही विधाता की सुन्दर कृति है, सुकृति है। **अग्नि** वाणी होकर मुख में, **वायु** प्राण होकर नासिकाओं में **आदित्य** चक्षु होकर आँखों में, **दिशाएँ** श्रोत्र होकर कानों में **ओषधि** तथा **वनस्पति** लोम होकर त्वचा में **चन्द्रमा** मन बनकर हृदय में, **मृत्यु** अपान होकर नाभि में, तथा **जल** वीर्य होकर जनन–प्रदेश में प्रविष्ट हो गए। (ऐ. उ. 1.2.1–4)।

इस प्रकार उस विराट् पुरुष ने मानव शरीर की बड़ी ही सुन्दर एवं अद्भुत कृति की रचना की। अथर्ववेद में 'केन सूक्त' में कवि कह उठता है "अहो ! किस विलक्षण कारीगर ने इस मानव शरीर में एड़ियाँ बनाईं, किसने मांस भरा, किसने टखने बनाए, किसने परुओं वाली उँगलियाँ और किसने छिद्र बनाए ? नीचे टखने और ऊपर जाँघें, दोनों घुटनों के जोड़ रचे, किसने कूल्हे, मनुष्य की छाती, गर्दन बनाई, स्तन, कपोल, कन्धें, भुजाएँ, दो कान, दो नाक, मुख रचे ? किसने प्राण–अपान का ताना–बाना बुना, किसने बल प्रदान किया, किसने बुद्धि पैदा की आदि–आदि। अथर्व 10, 201–17

मनुष्य वाणी द्वारा अपने विचार दूसरों पर प्रकट कर सकता है। मन से चिन्तन कर सकता है, बुद्धि से बड़ी से बड़ी समस्या सुलझा सकता है। ये सभी कार्य विलक्षण हैं और उस विराट् पुरुष सर्वश्रेष्ठ एवं अद्भुत कृति के कारण ही मानव शरीर को श्रेष्ठता का पद प्राप्त हुआ, जिसे सभी देवताओं ने सराहा तथा अपना निवास बनाया।

इसी मानव शरीर को देवों की पुरी कहा गया है। अथर्ववेद के अनुसार "शरीर की हड्डियों को समिधाएँ बनाकर, रस–रक्त आदि को जल बनाकर, रेतस् को घृत बनाकर सब देवपुरुष शरीर में प्रविष्ट हुए हैं। और यज्ञ रच रहे हैं। प्रजापति ब्रह्म भी इसके अन्दर हैं, सूर्य चक्षु रूप में प्रविष्ट हैं इस शरीर में सभी जल, देवता, समस्त विराट् जगत प्रविष्ट हैं। वायु प्राण रूप में। जैसे गौएँ गोशाला में रहती हैं वैसे ही सब देव इसी शरीर मे आकर बस गए हैं। अथर्व 11–8, 29–32

यह मानव शरीर विषय–भोग का साधन न समझा जाए, यह एक पवित्र यज्ञ–गृह है, यज्ञ–स्थली है। अथर्ववेद (10,2,14) पूछता है" किस एक देव ने पुरुष शरीर के अन्दर यज्ञ को निहित किया है? इसका उत्तर उपरोक्त 11.8. 29 में दिया जा चुका है जहाँ हड्डियाँ ही समिधाएँ है, रुधिर आदि आठ प्रकार के जल हैं और रेतस ही घृत है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में भी हड्डियों को समिधा और रेतस को घृत कहा गया है। (तै. ब्रा– 1.1.9.4)। मन के द्वारा ही सप्तहोता यज्ञ चल रहा है (यजु 34. 4) ये सप्तहोता कोई और नहीं अपितु हमारी पाँच ज्ञानेद्रियाँ, मन और बुद्धि है। इन सप्तहोताओं से परिचालित यज्ञ ज्ञानप्राप्ति रूप यज्ञ ही है। इसी प्रकार गोपथ–ब्राह्मण में उल्लेख है– पुरुष का शरीर यज्ञ–भूमि है, मन इस यज्ञ का ब्रह्मा है, प्राण उद्गाता है, अपान प्रस्तोता है, व्यान प्रतिहर्त्ता हैं, आँख अध्वर्यु हैं, प्रजापति सदस्य है, अन्य अंग होत्राशेसी हैं और आत्मा यजमान है। गोपथ उ 5.4

छान्दग्योपनिषद् में भी मानव शरीर के यज्ञ का वर्णन प्राप्य है।

"पुरुष का शरीर यज्ञ–भूमि है, उसकी आयु के प्रथम 24 वर्ष प्रातः सवन, अगले 44 वर्ष माध्यन्दिन सवन, तत्पश्चात् आगे के 48 वर्ष तृतीय सवन है। इस प्रकार 116 वर्ष चलने वाला यज्ञ है अर्थात् जो अपने शरीर को इस तरह से चलाता है वह 116 वर्ष तक जीवित रह सकता है। (छा. उ. 3.16)

इन सब से बढ़कर यजुर्वेद का (34.55) मन्त्र कहता है कि इस शरीर में सात ऋषि बैठे हुए हैं और ये सप्त ऋषि निरन्तर शरीर की रक्षा कर रहे हैं। जब शरीर सोता है तो सातों ऋषि आत्म–लोक में चले जाते हैं परन्तु दो देव ऐसे हैं जो उस समय भी शरीर में जागते रहते हैं। ये सात ऋषि पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हैं जो सदैव शरीर रक्षा में तत्पर रहते हैं और जब ये सातों सोने के समय आत्म लोक में चले जाते हैं तो दो देव फिर भी जागते रहते हैं, वे हैं – आत्मा और प्राण। यदि ये भी चले जाएँ तो शरीर मृत हो जाए। ये सप्त ऋषि दो कान, दो नाक, दो आँख और एक मुख भी हो सकते हैं जैसा कि शतपथ ब्राह्मण (14.4.2) में कहा गया है कि दो कान गौतम और भारद्वाज, दो नासिकाएँ वसिष्ठ और कश्यप, दो आँखें विश्वामित्र और जमदग्नि और मुख अत्रि है। इस प्रकार यह शरीर ऋषियों की तपोभूमि हैं और इसे किसी प्रकार से भी दूषित नहीं करना चाहिए।

इस अत्योत्तम मानव शरीर को रथ भी कहा गया है। कठोपनिषद में इसका वर्णन इस प्रकार है – शरीर एक रथ है, बुद्धि उसकी सारथी है, मन लगाम है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं, विषय चरागाह है जो बुद्धि रूपी सारथि का उपयोग नही करता, मन–रूपी लगाम को काबू में नहीं रखता, उसकी इन्द्रियाँ वश से बाहर हो जाती हैं और परिणाम स्वरूप घोड़े अनियन्त्रित हो जाते हैं।

शरीर की रथ से उपमा वेदों में भी दी गई है। ऋग्वेद 2,18, 1, में वर्णन है कि मनुष्य शरीर इन्द्र का रथ है, जिसमें चार युग है, तीन कशाएँ (चाबुक) हैं। प्रातःकाल साफ–सुथरा और नया करके जोता जाता है। सदिच्छाओं और बुद्धियों से चलाया जाता है।

यहाँ इन्द्र "आत्मा", चार युग–"दो भुजाएँ, दो पाँव", तीन चाबुक–"मन', 'बुद्धि', 'प्राण' सात लगाम–सात प्राण, दस घोड़े–दस इन्द्रियाँ।

इस प्रकार से मानव शरीर उस परमपिता परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट कृति है इसीलिए इसे **देवानां पूरयोध्या** से अलंकृत किया गया है। अथर्ववेद का यह मन्त्र (10.2.31) उद्घोष कर रहा है **अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।**

तस्मिन् हिरण्ययः कोशः

स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

आठ–चक्रों वाली, नव–द्वारों वाली अयोध्या नामक देवों की पुरी है। उसमें एक हिरण्यमय–तेजोमय कोश है जो ज्योति से आवृत स्वर्ग है। भाव यह कि यह मानव देह ही देवों की अयोध्या नगरी है, देवों की अजय पुरी है। इस पुरी में आठ चक्र (मूलाधार–चक्र, स्वाधिष्ठानचक्र, मणिपूरकचक्र, सूर्यचक्र, विशुद्धिचक्र, ललनाचक्र, आज्ञाचक्र एवं सहस्राचक्र) और नौ द्वार हैं– दो नेत्र, दो श्रोत्र, दो नासिकाएँ, एक मुख, एक उपस्थ एक मलद्वार। उसी पुरी में हिरण्यमय तेजोमय कोष है जो कि ज्योति से आवृत है। स्वर्ग है जो सुख विशेष की ओर ले जाने वाला है–

तात्पर्य यह है–यह श्रेष्ठ कृति मानव शरीर जो देवताओं को प्रिय है, यज्ञ स्थली है, ऋषि भूमि है, ऋषियों की तपोभूमि है, एक अद्भुत रथ है। यहाँ निरन्तर तप का संचार हो रहा है. यज्ञ का निरन्तर प्रसार इसे सुगन्धित कर रहा है। इसे दूषित न होने दें, इसी रथ के द्वारा दूरवर्ती लक्ष्य तक पहुँचना है, देवभूमि में रहकर देवत्व की ओर बढ़ना है। आओ! दिव्य पथ के पथिक बनें।

गली मास्टर मूलचन्द वर्मा
फाजिलका (पंजाब) 152123
मो. 7009822720

इस प्रकार उस विराट् पुरुष ने मानव शरीर की बड़ी ही सुन्दर एवं अद्भुत कृति की रचना की। अथर्ववेद में 'केन सूक्त' में कवि कह उठता है "अहो ! किस विलक्षण कारीगर ने इस मानव शरीर में एड़ियाँ बनाईं, किसने मांस भरा, किसने टखने बनाए, किसने परुओं वाली उँगलियाँ और किसने छिद्र बनाए ? नीचे टखने और ऊपर जाँघें, दोनों घुटनों के जोड़ रचे, किसने कूल्हे, मनुष्य की छाती, गर्दन बनाई, स्तन, कपोल, कन्धें, भुजाएँ, दो कान, दो नाक, मुख रचे ? किसने प्राण-अपान का ताना-बाना बुना, किसने बल प्रदान किया, किसने बुद्धि पैदा की आदि-आदि।

पत्र/कविता

उदयपुर में राष्ट्र मन्दिर के लोकार्पण पर विशेष

सर्वोच्च राष्ट्रमन्दिर

आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।
दयानन्दी दृष्टि का सच्चा सखा।

काम है इसमें न किंचित शोक का।
वेद गर्भित वृक्ष सत्य अशोक का।
तत्वबोधी तान ऋषि का लखलखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

साधना का सार यह सत्यार्थ का।
नित्य नव भवितव्य वैदिक पार्थ का।
हो गया वह धन्य जिसने भी लखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

सुसंस्कारों का अनोखा रथ यहाँ।
देश भक्तों का हठीला पथ यहाँ।
उदयपुर में स्वाद अमृत का चखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

सिंह गाता राग भैरव भैरवी।
नित सुमेधा यत्न गैरिक गैरवी।
कलश हँसता नींव का पत्थर रखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

राष्ट्र की है रीढ़ चेतन तीर्थ स्थल।
दिव्यता की दीप्ति याज्ञिक शेष जल।
नहीं शब्दों में इसे जाये भखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

यह सनातन सूर्य शाश्वत तान है।
नव्यता के नेत्र वैदिक गान है।
यह 'मनीषी' मर्म भेदक बघनखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

क्षण सदाशय प्रण महाशय प्राण से।
विकसते राजीव कर कल्याण से।
सगुण निर्गुण धर्म धारे अँगरखा।
आर्य जन का राष्ट्र मन्दिर नवलखा।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन 'मनीषी'
डी–801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट,
सैक्टर –92, नया गुरुग्राम हरियाणा–122505
मो. 9810835335

आर्यसमाज का तीसरा (वेद विषयक) नियम

– डॉ. भवानीलाल भारतीय

{आर्यसमाज के 1877 ई. में लाहौर में निर्धारित किए गए} प्रथम दो नियमों में ब्रह्मांड के नियामक परम तत्त्व का सुस्पष्ट निरूपण किए जाने के पश्चात् स्वामी दयानंद ने यह भी आवश्यक समझा था कि भूमंडल को सभ्यता का प्रथम पाठ पढ़ाने वाली आर्य जाति के समस्त ज्ञान–विज्ञान के आदि स्रोत वेदों के प्रति अपने कर्त्तव्य को सुनिश्चित किया जाए। फलतः आर्य समाज के तृतीय नियम में वेदों को समस्त सत्य विद्याओं का आदि मूल घोषित करते हुए उसके पठन–पाठन, अध्ययन–अध्यापन एवं श्रवण–श्रवण को आर्य मात्र का परम धर्म स्वीकार किया गया।....

आर्यसमाज के नियमों का निर्धारण अत्यन्त सूझ–बूझ के साथ किया गया था, और ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रक्खा गया था कि इस संगठन को समग्र मानव जाति के व्यापक हित और कल्याण के अनुष्ठान का सार्वजनीन मञ्च बनाया जाए। जिस समय आर्यसमाज के नियमों में वेद की मान्यता के सिद्धान्त को प्रविष्ट कराया जा रहा था, उस समय ब्राह्मसमाज के कुछ अनुयायियों ने महाराज से आग्रह किया कि यदि वे अपनी संस्था के नियमों में वेद विषयक मतवाद को स्थान न दें तो अधिक संख्या में लोग आर्यसमाज में प्रविष्ट होंगे। विशेषतः ब्राह्म मतानुयायियों के लिये आर्यसमाज का सभासद बनना अधिक सुगम हो जाएगा किन्तु दयानन्द के लिये वेद विषयक मन्तव्य को छोड़ना असम्भव था।

टिप्पणियाँ : 1. महात्मा मुंशीराम ने यह स्वीकार किया है कि आर्य समाज के वेद विषयक तृतीय नियम के निर्धारण में स्वामी जी तथा राय मूलराज के बीच व्यापक परामर्श हुआ था – गुरुकुल मैगजीन अक्टूबर 1908

2. आर्यसमाज लाहौर द्वारा स्वीकृत ये नियम और उपनियम 1934 वि. (1878 ई.) में न्यू मेडिकल हाल प्रेस, बनारस में मुद्रित हुए थे। एक विशेष ध्यान देने की बात यह है कि इन मुद्रित नियमों में नियम संख्या 3 इस प्रकार है –

"वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना, और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।"

आज जिस रूप में यह नियम मिलता है उसमें 'सत्य विद्याओं' के पूर्व 'सब' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यह और भी विचित्र बात है कि अनेक प्राचीन पुस्तकों में भी 'सब' का प्रयोग 'सत्य विद्याओं' से पूर्व नहीं मिलता। अब यह अन्वेषणीय है कि 'सब' विशेषण का प्रयोग कब और कैसे प्रचलित हुआ ? राय बहादुर मूलराज ने कालान्तर में यह दावा किया था कि आर्यसमाज के नियमों एवं उपनियमों के निर्धारण में उन्होंने उस समय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। परन्तु महात्मा मुंशीराम ने इस सम्बन्ध में संदेह व्यक्त करते हुए लिखा था –"He gives himself out as the author of the ten principles of the Arya Samaj, although people are sceptic as to his power of even understanding some of them." (अर्थात् वह स्वयं को आर्य समाज के दस सिद्धांतों के लेखक के रूप में प्रस्तुत करता है, हालांकि लोगों को संदेह है कि उनमें से कुछ को समझने की उसकी शक्ति भी है।) – The Gurukula Magazine, Vol-II, No.7, Pausha, 1965 V.

वे {स्वामी जी} जानते थे कि वेद के प्रति एतद्देशीय जनसमाज में जैसा श्रद्धाभाव है तथा सभी मतों एवं सम्प्रदायों के आचार्यगण वेद के सम्मुख नत मस्तक होकर उसके आदेश को जिस प्रकार स्वीकार करते हैं, उसे देखते हुए वेद प्रामाण्य को आर्यसमाज का बिन्दु बनाना सर्वथा उचित ही था। इतना ही नहीं, वे यह भी मानते थे कि वेदप्रतिपादित धर्म की वैज्ञानिकता, तर्कमूलकता तथा सृष्टिक्रम से अविरुद्धता को देखते हुए इसी के आधार पर न केवल भारतीय समाज को ही, अपितु विश्व मानव को भी एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है।

नोट : उपर्युक्त दोनों टिप्पणियाँ डॉ. भारतीय द्वारा लिखित हैं। दूसरी टिप्पणी के अंग्रेज़ी वाक्य का अनुवाद मैंने किया है – भावेश।

{स्रोत : नवजागरण के पुरोधा दयानंद सरस्वती, प्रथम अजमेरीय संस्करण, पृष्ठ 298, 299, 326, 327, प्रस्तुतकर्त्ता : भावेश मेरजा}
मो. 9879528247

****

कोलकात्ता के तीन आर्यसमाजों ने मिलकर मनाया महर्षि महिमा एवं ऋषि बोधोत्सव

आर्य समाज स्थापना के 150वें वर्ष के उपलक्ष्य में कोलकात्ता की तीन आर्यसमाजों—बड़ा बाजार, विधान सरणी एवं हावड़ा—के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित 'महर्षि महिमा पर्व ऋषि बोधोत्सव' पर चार दिन तक प्रातः 'चतुर्वेद शतक यज्ञ' किया।

द्वितीय दिवस 'वर्ण व्यवस्था सम्मेलन' का आयोजन किया गया, जिसमें आचार्य ज्वलंत कुमार शास्त्री, प्रो. विनय विद्यालंकार के साथ—साथ डॉ. त्रिद्वीप सरकार, डॉ. तारकनाथ जी, डॉ. हरिदास सरकार, डॉ. प्रद्युत दत्ता और डॉ. प्रताप राय ने अपने शोधपरक विचार रखे।

संध्या कालीन सत्र में आयोजित 'भाषण प्रतियोगिता' में महानगर के 15 प्रतिष्ठित विद्यालयों के लगभग 25 छात्र—छात्राओं ने **'ऋषि दयानंद और उनका राष्ट्र के प्रति योगदान'** विषय पर ओजस्वी विचार रखे।

'महर्षि महिमा पर्व' के तृतीय दिवस के प्रातः कालीन सत्र का मुख्य आकर्षण बिहार राज्य के महामहिम राज्यपाल श्री आरिफ मुहम्मद खान की उपस्थिति और उनके द्वारा ऋषि दयानन्द और आर्य समाज के प्रति सारगर्भित और श्रद्धापूरित वक्तव्य था। उन्होंने आर्यसमाज की प्रासंगिकता और आवश्यकता पर भी प्रकाश डाला। डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री और प्रो. विनय विद्यालंकार जी ने भी अपने उद्‌गार व्यक्त किये।

संध्या 5 बजे से आयोजित सत्र में नारी शक्ति के स्वावलंबन का गौरवमयी स्वरूप दृष्टिगोचर हुआ।

सायंकालीन विमर्श का मुख्य विषय था—**'आगामी शताब्दी में आर्य समाज की उपयोगिता'।** डॉ. धर्मपाल आर्य एवं प्रो. विनय विद्यालंकार ने भविष्य की चुनौतियों और महर्षि के विचारों की प्रासंगिकता पर शोधपूर्ण विचार रखे।

अंतिम दिवस का शुभारंभ प्रातः 8 बजे आर्य समाज मंदिर (19, विधान सरणी) में हुआ। 'चतुर्वेद शतकम यज्ञ' की पूर्णाहुति सम्पन्न की गयी।

'ऋषि बोध दिवस' के अवसर पर ऋषि दयानंद के जीवन दर्शन पर विशेष व्याख्यान आयोजित किए गए।

आर्य समाज की स्थापना के 150 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में 150 आर्य परिवारों ने यज्ञ की 150 वेदियों पर आहुतियाँ समर्पित कीं। भजनोपदेशक श्री प्रदीप आर्य ने अपने 'ऋषि गीतों' से श्रद्धालुओं को भाव—विभोर कर दिया।

श्री दीपक आर्य ने इस ऐतिहासिक आयोजन की सफलता का श्रेय कार्यकर्ताओं और सदस्यों को सधन्यवाद दिया।

सामूहिक शांति पाठ के साथ इस चार दिवसीय महोत्सव का समापन हुआ।

ऋषि बोधोत्सव पर आर्य समाज धर्मशाला के नए भवन का लोकार्पण

धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश) में आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा (नई दिल्ली) से सम्बद्ध आर्यसमाज के पुराने भवन के स्थान पर नए भवन का निर्माण किया जा रहा है। इसका भूमि—तल (ground floor) बनकर तैयार हो चुका है।

इस वर्ष ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर इस नवनिर्मित भवन में विधि पूर्वक यज्ञ करके इस पर्व को हर्षोल्लास से मनाया गया। यज्ञोपरान्त मधुर भजनों का गायान हुआ। आर्य समाज के सदस्यों (सपरिवार) तथा डी.ए.वी. स्कूल के प्राचार्य, अध्यापकों, विद्यार्थियों तथा अभिभावकों ने इस उत्सव में सक्रिय भागीदारी की।

बताया गया कि इस निर्माण में आर्यसमाज, स्थानीय दानवीरों, डी.ए.वी. के अध्यापक वर्ग के अतिरिक्त छात्रों के अभिभावकों ने दान देकर सहायता की है। कार्यक्रम के पश्चात् यज्ञ शेष वितरित किया गया।

☞ पृष्ठ 01 का शेष

नवलखा महल उदयपुर के गुलाब बाग में ...

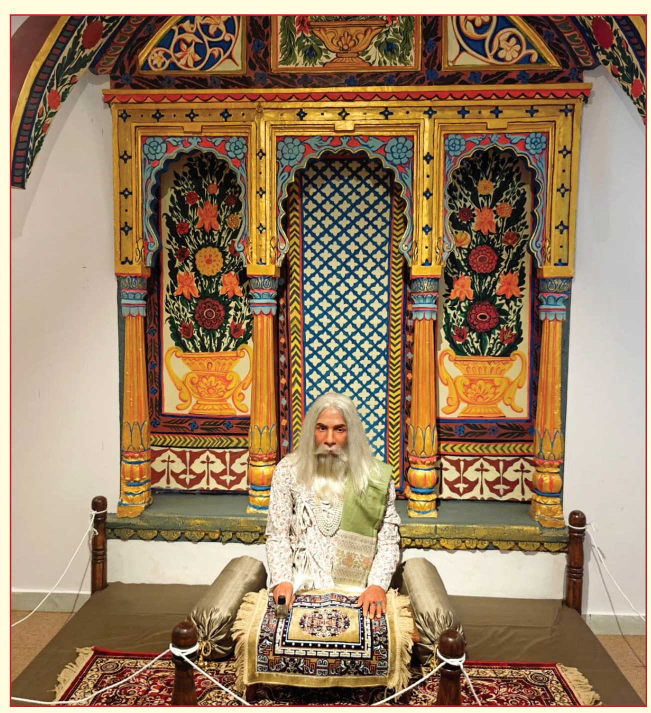

सज्जन सिंह जी कोठारी ने भी अपने विचार व्यक्त किए। उदयपुर के सांसद डॉ. मन्नालाल रावत ने कहा कि इसी नवलखा महल में गोविंद गुरु ने महर्षि दयानंद जी महाराज से दीक्षा ली और अग्निकुंड जो उन्होंने बनाया वह आज भी धुनी के रूप में आदिवासियों के बीच में जारी है जिसमें वे अपने प्रकार से यज्ञ संपन्न किया करते हैं।

सभी वक्ताओं ने अपने वक्तव्य में राष्ट्र मंदिर में जिन 18 क्रांतिकारियों के प्रदर्श प्रस्तुत किए हैं और जिस रूप में किए हैं उसकी भूरि—भूरि प्रशंसा की।

इस अवसर पर राजस्थान आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से राष्ट्र मन्दिर की कल्पना करने वाले न्यास के अध्यक्ष श्री अशोक आर्य जी का अभिनंदन किया गया।

अध्यक्ष के रूप में स्वामी सुमेधानंद जी सरस्वती ने स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन से शिक्षा लेकर के आर्यसमाज को किस प्रकार से आगे बढ़कर के कार्य करना चाहिए और आगामी वर्ष में स्वामी श्रद्धानंद जी के व्यक्तित्व कृतित्व को सब तक पहुँचाना चाहिए इसकी आवश्यकता और स्वरूप का वर्णन किया। राष्ट्र मन्दिर का लोकार्पण डॉ. मन्नालाल रावत, सांसद उदयपुर, स्वामी सुमेधानन्द, पूर्व सांसद—सीकर एवं न्यास के न्यासियों द्वारा किया गया। सभी का धन्यवाद न्यास के संयुक्त मंत्री डॉ. अमृत लाल तापड़िया ने किया। शांति पाठ के साथ आयोजन समापन हुआ।

Registration No. R.N.I. 39\57
Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11\6066\2024-25-26
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103\2024-25-26
Posted at L.P.C.(Delhi RMS)D110006 ON Wednesday & Thursday, 2026

औरंगाबाद में स्वामी दयानंद जन्मोत्सव सह बोधोत्सव संपन्न

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, दयानंद विहार, औरंगाबाद में स्वामी दयानंद जन्मोत्सव सह बोधोत्सव धूमधाम के साथ मनाया गया। प्रथम दिवस भजन–संध्या का आयोजन किया गया संध्या के मंत्रों का पाठ कर परमपिता परमात्मा का स्मरण किया गया।

मुख्य अतिथि, जिला वन अधिकारी, औरंगाबाद श्रीमती रुचि सिंह तथा विभिन्न प्रक्षेत्र से आए सहायक क्षेत्रीय पदाधिकारीगण एवं प्राचार्यगण ने दीप प्रज्वलित किया। धर्माचार्य पंडित मनोज शास्त्री ने ईश वंदना तथा दयानंद गुणगान प्रस्तुत किया। श्री वी. आनंद जी ने धन्यवाद ज्ञापित किया।

द्वितीय दिवस का प्रारंभ 101 कुंडीय विश्व शांति महायज्ञ हुआ। इस यज्ञ में मुख्य यजमान श्री एस. के. झा रहे। अन्य सभी हवन कुंडों पर विद्यालय के अभिभावकगण उपस्थित रहे। इसके साथ अनेक विद्यालयों से आए धर्माचार्यों ने भी यज्ञ के सफल संचालन में सहयोग प्रदान किया। यज्ञोपरान्त समस्त जनसमूह ने यज्ञ प्रार्थना की। अंत में यज्ञ के ब्रह्मा एवं उपसभा, प्रधान तथा मंत्री जी ने सभी यजमानों पर पुष्प वर्षा कर आशीर्वाद प्रदान किया।

मंचीय कार्यक्रम का शुभारंभ दीप प्रज्वलित कर किया गया।

औरंगाबाद विधायक ने बताया कि यदि हम स्वामी दयानंद के आदर्शों को अपने जीवन में आत्मसात करें तो हमारा भारत निःसंदेह विश्वगुरु बन सकता है। श्री आर. राय जी ने ऋषि दयानंद, स्वामी जी के कार्यों का वर्णन किया और आर्यसमाज के नियमों के महत्व को बताया। प्रधान श्री एस.के. झा ने कहा कि यह कार्यक्रम तभी सफल माना जाएगा जब इस क्षेत्र के सभी युवाओं में आर्य समाज के सिद्धांतों की ज्योति जलेगी जिससे स्वामी जी के सिद्धांतों के प्रचार–प्रसार में गति मिलेगी।

अंत में सुश्री अंजलि ने सभी अभ्यागतों तथा विद्यालय के सभी सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापित किया।

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला में स्वामी दयानंद सरस्वती जयंती

हंसराज पब्लिक स्कूल, पंचकूला में आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंद सरस्वती जी की 202वीं जयंती बड़े श्रद्धा, उत्साह और गरिमा के साथ सप्ताह भर मनाई गई।

सप्ताह के दौरान प्रतिदिन प्रातःकालीन सभा में विद्यार्थियों द्वारा भजन–गायन एवं मंत्रोच्चारण किया गया। विद्यार्थियों ने स्वामी दयानंद सरस्वती जी के जीवन, उनके समाज–सुधारक कार्यों, वेदों के प्रचार–प्रसार में उनके अमूल्य योगदान पर प्रकाश डाला। उनके **"वेदों की ओर लौटो"** के संदेश और कुरीतियों के उन्मूलन हेतु किए गए संघर्षों को विशेष रूप से रेखांकित किया गया।

वैदिक रीति से हवन–यज्ञ किया गया। विद्यार्थियों एवं शिक्षकों ने आहुतियाँ अर्पित कर राष्ट्र, समाज एवं मानवता के कल्याण की कामना की।

सप्ताह के अंतर्गत "नो नशा नेशन" विषय पर सुसज्जित झाँकी (Tableau) तैयार की गई, जो स्वामी दयानंद जी के सामाजिक सुधार के आदर्शों से प्रेरित थी। इस झांकी ने उत्कृष्ट प्रस्तुति के लिए तृतीय पुरस्कार प्राप्त किया।

विद्यालय की प्राचार्या महोदया ने अपने संदेश में स्वामी दयानंद सरस्वती जी के आदर्शों को आत्मसात करने का आह्वान किया।

डी.ए.वी. पक्खोवाल लुधियाना ने स्वामी श्रद्धानन्द को किया स्मरण

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पक्खोवाल रोड लुधियाना में स्वामी श्रद्धानंद जी की स्मृति में श्रद्धा, उत्साह एवं प्रेरणा से परिपूर्ण आयोजन किया गया।

कार्यक्रम का आरंभ विशेष हवन यज्ञ से हुआ जिसमें प्रधानाचार्या डॉ. सतवंत कौर भुल्लर, अध्यापक वर्ग तथा विद्यार्थियों ने श्रद्धापूर्वक भाग लिया। प्रधानाचार्या ने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए गुरु–शिष्य परंपरा के महत्व पर प्रकाश डाला तथा स्वामी श्रद्धानंद जी के प्रेरणादायी जीवन, उनके आदर्शों, त्याग और राष्ट्र सेवा की भावना से उपस्थितजनों को अवगत करवाया और उनके आदर्शों को अपने जीवन में अपनाने के लिए प्रेरित किया।

विद्यार्थियों के लिए गुरु शिष्य परंपरा पर आधारित भाषण प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भाग लेते हुए गुरु के प्रति सम्मान, ज्ञान के महत्त्व और भारतीय संस्कृति के मूल्यों को सही ढंग से प्रस्तुत किया। विद्यार्थियों को स्वामी श्रद्धानंद जी के जीवन पर आधारित वीडियो भी दिखाई गई।

सभी गतिविधियों के माध्यम से विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति, नैतिक मूल्यों और महान व्यक्तियों के प्रति सम्मान की भावना का विकास हुआ।

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **फर्स्ट इम्प्रैशन कार्पोरेट सर्विसिज, (प्रा.) लि.,** ई.113–114, सैक्टर–63, नोएडा, उ.प्र.–201301 (दूरभाष : 120–4246315) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**